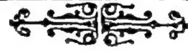
प्रकाशक —
पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
सचालक :—
विद्याविभाग, कांकरोली



प्रथम संस्करण सं. १९९४—१५००
द्वितीय सस्करण सं. २०१३— ५००



मुद्रक :
चन्द्रकान्त भूषणदासजी साधु
चेतन प्रकाशन मदिर, (प्रि. प्रेस)
' चेतनधाम ' मीयावाग, वडोदा
ता १-८-१९५६.

* श्रीद्वारकेशो जयति *

प्रारम्भिक वक्तव्य



स० १९८० में 'श्रीद्वारकानाथजी के प्राकट्य की वार्ता' नामक पुस्तक 'श्रीलल्लूभाई छगनलाल देसाई' ने छपवाकर प्रसिद्ध की थी। उक्त महाशय सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता हैं। यद्यपि प्रकाशक के कथनानुसार उक्त प्राकट्य वार्ता में प्रामाणिक ढंग से विषय वर्णन किया गया है, तथापि उसमें उतनी प्रामाणिकता और सत्यता का अंश नहीं आ पाया है, जितना आवश्यक है। स्वयं वे अपनी भूमिका में इसका उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त वह स्वयं इसे स्वीकार करते हैं कि–उन्हें असली सरस्वती-भंडार, कांकरोली में विद्यमान 'श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य वार्ता' देखने को नहीं मिली। यद्यपि वह इस कार्यार्थ दो–चार बार कांकरोली आये थे। अन्त में निराश होकर उन्होंने 'एक भावुक वैष्णव' द्वारा वार्ता के कुछ अंश का संकलन कर उक्त पुस्तक के नाम से इस वार्ता ग्रन्थ का प्रकाशन कर दिया था।

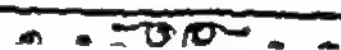
नित्यलीलास्थ गो० श्री १०८ बालकृष्णलालजी महाराजश्री तथा उनके आत्मज गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज तथाच गो० श्रीविट्ठलनाथजी महाराज के बाल्यकाल में उनके प्रवचनरूप में जिन वैष्णवों को मूल 'श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य वार्ता' सुनने का अवसर अधिगत हुआ था, वे प्रस्तुत दोनों ग्रन्थों (वार्ताओं) का तारतम्य सहज ही हृदयंगम कर सकते हैं। जिन महानुभावों ने दोनों पुस्तकों का वाचन अथच श्रवण किया है, वे प्रथम प्रकाशित तद्विषयक पुस्तक से उसी प्रकार विमनस्क हो जाते हैं जिस प्रकार लौकिकानन्द की ओर से आत्मानन्द प्राप्त करनेवाला हो जाया करता है। एतदर्थ वैष्णवों के हृदय में जागृत रस-पिपासा की पूर्ति के लिये श्रीतृतीयपीठ कांकरोली के विद्या-विभाग को इस ओर प्रयत्न करने को बाध्य होना पड़ा था। जिसके फलस्वरूप गो० श्री १०८ बालकृष्णलालजी महाराज के हस्ताक्षरों से लिखी गई प्राकट्य वार्ता की प्रेस–कापी तैयार कराई गई, और उसके प्रकाशन का विचार बद्धमूल किया गया।

विद्या–विभाग के 'सरस्वती–भंडार' में प्रस्तुत वार्ता के निम्नलिखित चार संस्करणों का पता लगता है।

प्रकाशक —
पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
संचालक :—
विद्याविभाग, कांकरोली



प्रथम संस्करण सं. १९९४—१५००
द्वितीय संस्करण सं. २०१३— ५००



मुद्रक :
चन्द्रकान्त भूषणदासजी साधु
चेतन प्रकाशन मंदिर, (प्रि. प्रेस)
'चेतनधाम' मीयाबाग, वडोदा
ता १-८-१९५६.

* श्रीद्वारकेशो जयति *

प्रारम्भिक वक्तव्य



स० १९८० में 'श्रीद्वारकानाथजी के प्राकट्य की वार्ता' नामक पुस्तक 'श्रीलल्लूभाई छगनलाल देसाई' ने छपवाकर प्रसिद्ध की थी। उक्त महाशय सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता है। यद्यपि प्रकाशक के कथनानुसार उक्त प्राकट्य वार्ता में प्रामाणिक ढंग से विषय वर्णन किया गया है तथापि उसमें उतनी प्रामाणिकता और सत्यता का अंश नहीं आ पाया है, जितना आवश्यक है। स्वय वे अपनी भूमिका में इसका उल्लेख करते है। इसके अतिरिक्त वह स्वयं इसे स्वीकार करते है कि–उन्हें असली सरस्वती-भडार, काकरोली में विद्यमान 'श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य वार्ता' देखने को नहीं मिली। यद्यपि वह इस कार्यार्थ दो–चार वार काकरोली आये थे। अन्त में निराश होकर उन्होंने 'एक भावुक वैष्णव' द्वारा वार्ता के कुछ अंश का सकलन कर उक्त पुस्तक के नाम से इस वार्ता ग्रन्थ का प्रकाशन कर दिया था।

नित्यलीलास्थ गो० श्री १०८ वालकृष्णलालजी महाराजश्री तथा उनके आत्मज गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज तथाच गो० श्रीविठ्ठलनाथजी महाराज के बाल्यकाल में उनके प्रवचनरूप में जिन वैष्णवों को मूल 'श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य वार्ता' सुनने का अवसर अधिगत हुआ था, वे प्रस्तुत दोनों ग्रन्थो (वार्ताओं) का तारतम्य सहज ही हृदयगम कर सकते हैं। जिन महानुभावों ने दोनों पुस्तकों का वाचन अथच श्रवण किया है, वे प्रथम प्रकाशित तद्विषयक पुस्तक से उसी प्रकार विमनस्क हो जाते हैं जिस प्रकार लौकिकानन्द की ओर से आत्मानन्द प्राप्त करनेवाला हो जाया करता है। एतदर्थ वैष्णवों के हृदय में जागृत रस-पिपासा की पूर्ति के लिये श्रीतृतीयपीठ कांकरोली के विद्या-विभाग को इस ओर प्रयत्न करने को बाध्य होना पडा था। जिसके फलस्वरूप गो० श्री १०८ वालकृष्णलालजी महाराज के हस्ताक्षरों से लिखी गई प्राकट्य वार्ता की प्रेस–कापी तयार कराई गई, और उसके प्रकाशन का विचार बद्धमूल किया गया।

विद्या–विभाग के 'सरस्वती–भडार' में प्रस्तुत वार्ता के निम्नलिखित चार सस्करणों का पता लगता है।

१ गो० श्रीव्रजभूषणजी महाराज [सवत् १७६५-१८३३] द्वारा सर्वप्रथम अपने पितृचरण श्रीगिरिधरजी से श्रवण कर लेखबद्ध की गई उस समय की यह पुस्तक सम्प्रति सरस्वती-भंडार में प्राप्त नहीं होती, किन्तु जिसकी अत्यन्त जार्ण-शीर्णता एव जहाँ तहाँ अधिकाश पत्र चिपक जाने का उल्लेख गो० श्रीबालकृष्णलालजी महाराज ने स्वहस्ताक्षर से लिखित पुस्तक में किया है।

२. उक्त गो० श्रीगिरिधरात्मज श्रीव्रजभूषणजी के समकालीन उनके पड्या प० गोवर्धन तुलारामजी द्वारा लिखित। यह पड्याजी प्रथम नाथद्वारा-निवासी थे। बाद में महाराजश्री इन्हें यज्ञ कराने के लिये काकरोली ले आये थे। उस समय से इनके वश-परम्परा की स्थिति काकरोली में हो गई। इन्हींके वशज प० मोहनलालजी पंड्या थे, जिनका गत वर्ष स्वर्गवास हो गया है। यह पुन्तक सरस्वती-मंडार में हि बध सं० ११९। ४ पर [अपूर्ण] सुरक्षित है, जो जन्मपत्री के आकार में ६ इंच चौड़ी एवं लगभग ५९ फ़ीट लम्बी लिखी गई है वार्ता लिखने का प्रसंग और उक्त वृत्तान्त हमें इसी प्रति से ज्ञात हुआ है।

३. गो० श्रीगिरिधरात्मज श्रीबालकृष्णलालजी [स. १९२४-१९७३] महाराजश्री के हस्ताक्षर द्वारा सवत् १९६० के पूर्व लिखी गई प्रति। जो स० भंडार में हि. बंध ११९ पु० सं० ५,१३ पर विद्यमान है।

४. नं० ३ के अनुसार ही उक्त महाराजश्री के द्वारा लिखित और सम्पादित प्रति इसका लेखन-सवत् १९६२ माघ शु० १५ और स्थान वड़ौदा है। स० मं० हि० बध ११९ पु० स० ६ पर विद्यमान है।

प्रस्तुत प्रकाश्यमान प्राकट्य वार्ता सं० ४ का ही प्रतिरूप है, जिसमें यत्र-तत्र अल्पांश में किन्हीं शब्दों और क्रिया तथा वाक्यों के सम्बन्ध का उचित सस्करण (सशोधन) विद्याविभागाध्यक्ष गो० श्रीबालकृष्णात्मज श्री १०८ व्रजभूषणलालजी महाराज ने किया है। इसी कारण पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मूल लेखक और उसके सम्पादक-द्वय का नामोल्लेख हुआ है।

तात्पर्य यह कि—प्रस्तुत प्राकट्य-वार्ता का भाव, कथानक तथा मूल-भाषा मूल-लेखक की है, और उसका उल्लासात्मक वर्गीकरण, वाक्यावली एव आवश्यक प्रासंगिक वर्णन उसके सम्पादक गो० श्रीबालकृष्णलालजी महाराज का है।

इस प्रकार उक्त ' श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य वार्ता ' को सर्वाङ्गीण सुन्दर सचित्र छपवाने का प्रयत्न किया है । यह ग्रन्थ ' श्रीद्वा० ग्रन्थमाला ' का १२ वाँ ग्रन्थरत्न है । इसका प्र. सस्करण स० १९९४ में प्रकाशित किया गया था, और आज द्वि० सस्करण उपस्थित किया जा रहा है ।

सं. १९९४ में शु० संप्रदाय के तृ० पीठ का सर्वांगीण रेखाचित्र खींचने के लिये 'कांकरोली' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया था, जिसका प्रथम भाग यह प्राकट्य-वार्ता है । द्वि० भाग 'कांकरोली का इतिहास', तृ० भाग 'सेवाशृंगार प्रणाली' और चतुर्थ भाग 'कीर्तन प्रणालिका' है। तात्पर्यंत प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा एक नवीन, सुन्दर एवं संग्राह्य अथच आवश्यक साहित्य जनता के सम्मुख रखने की चेष्टा की गई है । जहाँ तक ध्यान है-इस प्रकार के साहित्य को प्रस्तुत ढंग से उपस्थित करने का प्रयत्न शु. सं. के किसी भी पीठ ने भी अद्यावधि नहीं किया है । सम्प्रदाय के समस्त पीठाधीश्वरों से इस रूप में अपने-अपने घर की ' प्राकट्य-वार्ता '- आदि प्रकाशित करने का हम पुनः अनुरोध करते हैं ।

जैसा कुछ है, श्रीकरुणावरुणालय श्रीद्वारकाधीश प्रभु की परम पवित्र चरण-सेवा में यह ग्रन्थ सादर सश्रद्ध समर्पित है । श्रीवल्लभाधीश प्रभु से बलप्राप्ति की इतनी ही कामना करते हैं, जिससे इस प्रकार का सदनुष्ठान सुसम्पादित होकर साहित्य की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे । शम्

कांकरोली
ज्येष्ठाभिषेकोत्सव
सं० २०१३

विधेय—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
संचालक विद्या-विभाग.



" श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य-वार्ता "

की

विषय-सूची ।



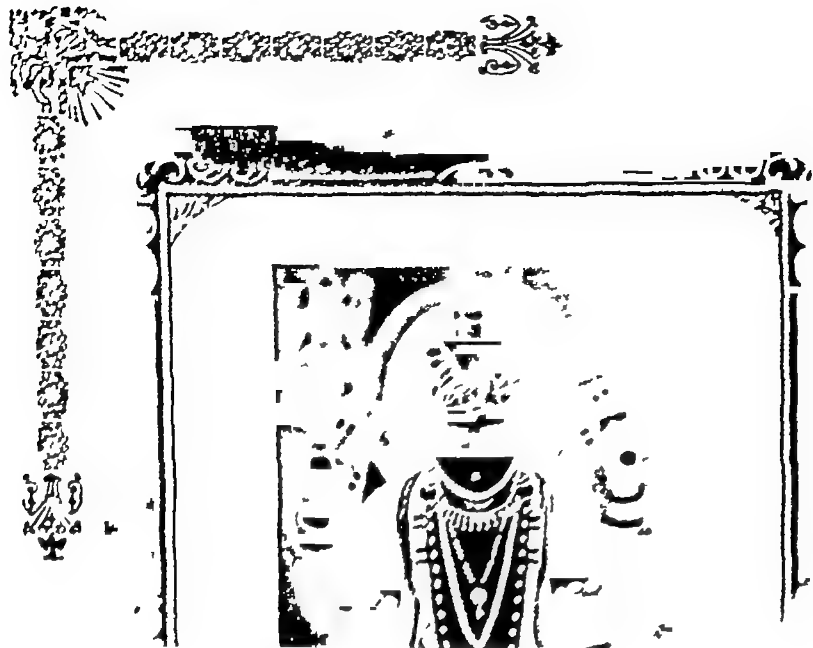
इति श्रीद्वारकाधीशजी प्राकट्य वार्ता-सूची सम्पूर्ण।



श्रीद्वारकाधीश प्रभु



श्रीद्वारकाधीश प्रभु



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

"श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य-वार्ता"



प्रथम उल्लास ।

★

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भस्युपाश्रुणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ।
स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानान्नृप ! यद्धनं विदुः ॥ ६ ॥

श्रीमद्भागवत द्वि० स्कं० ९ अ०

सृष्टि की रचना करिवे कूँ प्रवृत्त भए ब्रह्माजी कूँ जब स्वतः कोई मार्ग नहीं सूझ्यौ, तब उननें भगवत्स्वरूप कौ ध्यान कियो। वा समय जल के भीतर दो अक्षर दोइ विरियाँ सुनिवे में आए " तप " " तप "।

ये अक्षर सुनिकें ब्रह्माजी दशों दिशान में देखिवे लगे कि- यह वाणी कहाँ सूँ आई ? परन्तु कछु पता नहीं लग्यौ। तब ब्रह्माजी ने मन में सोची कि- मेरे हित के लिये तप करिवे की भगवदाज्ञा भई है, सो समझिकें देवतान के एक हजार वर्ष तांई तपश्चर्या करी। तब भगवान् ने प्रथम अपने लोक के दर्शन दिये, अरु फेर अपने स्वरूप के दर्शन दिये।

ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं, श्रियःपतिं, यज्ञपतिं, जगत्पतिम् ।
सुनन्दनन्दप्रवलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥ १४ ॥
भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ।
किरीटिनं, कुण्डलिनं, चतुर्भुजं, पीताम्बरं, वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५ ॥
अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं, वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ।
युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥ १६ ॥

भा० द्वि० स्क० ९ अ०

साक्षात् अक्षरब्रह्म-स्वरूपात्मक गोलोक में आपकौ (भगवान् कौ) स्वरूप कैसो है ? सो लिखें हैं :—

आप कहाँ कैसे हैं ? अखिलदेवाधिदेव, लक्ष्मीजी के पति, यज्ञपति, जगत्पति ऐसे हैं, और सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण, ये मुख्य चार पार्षद जिनकी सेवा करे हैं, विभु नाम समर्थ, अपने भृत्यन पे अनुग्रह करिवे कूँ सर्वदा तत्पर, जिनके दर्शन करिवे मात्र सूँ आँखिन में 'आसव' नाम नशा आय जाय, अर्थात् उन प्रभुन के दर्शन को छका अपने ब्रह्मांड में घूम जाय, ऐसे हैं। और प्रसन्न हासयुक्त अरुण लोचन तथा कमल-वदन हैं। मस्तक पे किरीट, कर्ण में कुण्डल, चतुर्भुज [चारभुजा] आयुधयुक्त, पीताम्बर धारण किये हैं। हृदय में लक्ष्मीजी विराजमान हैं। उत्तमोत्तम आसन पे विराजमान, पच्चीस तत्त्वरूप आवरणसहित, ऐश्वर्यादि छै धर्मयुक्त, सर्वदा अविच्छिन्न आपके अंग में यह सब स्थित रहैं, ऐसे हैं, सर्वदा आनंदमय-"आनन्दमात्रकर-पादमुखोदरादि"-वाक्यानुसार "आत्मारामोप्यरीरमत्"-अपने स्वरूप में रमण करिवेवारे। ऐसे साक्षात् पुरुषोत्तम-स्वरूप के दर्शन करिके ब्रह्माजी अत्यंत प्रेमविह्वल होय साष्टांग प्रणाम किये।

वही श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को स्वरूप श्रीद्वारकाधीश को है। प्रथम आपकी सेवा ब्रह्माजी ने करी, फेर चिरकाल पीछे सृष्टि के विस्तार के लिये अपने पुत्र कर्दम प्रजापति कूँ ब्रह्माजी ने आज्ञा करी।

मैत्रेय उवाच :--

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥
ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः । सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥
तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे । दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

(भा० तृ० २१ अ०)

में कुण्डल, श्वेत, रक्त, कमल की वनमाला श्रीकंठ में धारण किये भए " विरजोम्बरं " अर्थात् वीरस की अधिकता प्रदिपादित करिवेवारे अंबर वस्त्र (मल्लकाछ) धारण किये भए, श्रीप्रभु ने उन्हें दर्शन दिये।

सृष्टि रचनो श्रमसाध्य है, तासूँ वीरता-द्योतनार्थ यह वीर-वेष धारण कियो, यह अवांतर अर्थ है। मुख्य अर्थ :—पुष्टि में " साक्षान्मन्मथ-मन्मथः " अर्थात् काम कौ विजय कर अपनी अच्युतता-प्रगटार्थ मल्लकाछ धारण किये हैं। सो श्लोक :—

स तं विरजमर्काभ सितपद्मोत्पलस्रजम्। स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजाम्बरम् ॥९॥
किरीटिनं कुण्डलिन शङ्खचक्रगदाधरम। श्वेतोत्पलक्रीडनक मन स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥

(भागवत स्कं० ३ अ० २१)

कर्दम ऋषि कूँ ऐसे स्वरूप के साक्षात दर्शन दिए, और स्वायंभुव मनु की पुत्री देवहूति सूँ विवाह करिवे की आज्ञा करी। बाद में कपिलदेवजी के अवतारूप आप ही पुत्ररूप सूँ प्रगट भए- इत्यादि कथा सविस्तर श्रीभागवत में प्रसिद्ध है।

वोही श्रीद्वारकाधीशजी को स्वरूप मूर्ति-रूप कर्दम प्रजापति तथा देवहूति के यहाँ बिन्दुसरोवर पर विराजतो हतो। फेर जब कपिलदेवजी के द्वारा देवहूतिजी कौ मोक्ष भयो, तब पीछे यह स्वरूप वा बिन्दुसरोवर में रह्यो। यह बिन्दुसरोवर सिद्ध-क्षेत्र में सरस्वतीजी सूँ वेष्टित है, और साक्षात् भगवान् के हर्ष के अश्रु [आँसुन] की बूँद सूँ प्रगट भयो है। सो श्लोक :—

यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः। कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेर्पितया भृशम्। ३८ ॥
तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम्। पुण्य शिवामृतजल महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥

भा० तृ० स्क० २१ अ०

अपने शरण आए भए भक्त के ऊपर संपूर्ण कृपा कौ दान करती वखत श्रीभगवान् के नेत्रन में सूँ हर्ष के प्रेमाश्रु गिरे, वो ही बिन्दुसरोवर नामक कल्याणकारी पुण्य तीर्थ है।

वहाँ श्रीकपिलदेवजी के शिष्यन में सूँ एक ब्राह्मण शिष्य रहतो। वाकौ नाम देवशर्मा हतो। वाकौ पुत्र विष्णुशर्मा हतो। ये दोनों पिता-पुत्र महान् पवित्र कर्मनिष्ठ हते। इनकूँ समयान्तर में श्रीप्रभु द्वारकाधीश ने स्वप्न में आज्ञा करी

आप वहाँ कैसे हैं ? अखिलदेवाधिदेव, लक्ष्मीजी के पति, यज्ञपति, जगत्पति ऐसे हैं, और सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण, ये मुख्य चार पार्षद जिनकी सेवा करें हैं, विभु नाम समर्थ, अपने भृत्यन पे अनुग्रह करिवे कूँ सर्वदा तत्पर, जिनके दर्शन करिवे मात्र सूँ आँखिन में 'आसव' नाम नशा आय जायं, अर्थात् उन प्रभुन के दर्शन को छटा अपने ब्रह्मांड में धूम जाय, ऐसे हैं। और प्रसन्न हासयुक्त अरुण लोचन तथा कमल-वदन हैं। मस्तक पे किरीट, कर्ण में कुण्डल, चतुर्भुज [चारभुजा] आयुधयुक्त, पीताम्बर धारण किये हैं। हृदय में लक्ष्मीजी बिराजमान हैं। उत्तमोत्तम आसन पे बिराजमान, पच्चीस तत्त्वरूप आवरणसहित, ऐश्वर्यादि छे धर्मयुक्त, सर्वदा अविच्छिन्न आपके अंग में यह सब स्थित रहैं, ऐसे हैं, सर्वदा आनंदमय–"आनन्दमात्रकर-पादमुखोदरादि"–वाक्यानुसार "आत्मारामोप्यरीरमत्"–अपने स्वरूप में रमण करिवेवारे। ऐसे साक्षात् पुरुषोत्तम–स्वरूप के दर्शन करिके ब्रह्माजी अत्यंत प्रेमविह्वल होय साष्टांग प्रणाम किये।

वही श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को स्वरूप श्रीद्वारकाधीश को है। प्रथम आपकी सेवा ब्रह्माजी ने करी, फेर चिरकाल पीछे सृष्टि के विस्तार के लिये अपने पुत्र कर्दम प्रजापति कूँ ब्रह्माजी ने आज्ञा करी।

मैत्रेय उवाच :—

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः। सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥
ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः। संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥
तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे। दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

इत्यादि (भा० तृ० स्क० २१ अ०)

ब्रह्माजी ने कही कि–'हे पुत्र कर्दम ! तुम प्रजा उत्पन्न करो'। तब कर्दम ऋषि प्रजापती ने सरस्वतीजी के तट पे दस हजार वर्ष पर्यंत तपश्चर्या करी। ता पीछे समाधि–योगयुक्त तथा क्रियायोग सूँ—अर्थात् ध्यान सूँ—मानसी सेवा करिकें तथा प्रकट मूर्ति–पूजारूप क्रिया सूँ अपने पिता ब्रह्माजी के आराधनीय चतुर्भुज–स्वरूप (श्रीद्वारकाधीशजी) की एक शरण राखिकें भक्तिपूर्वक सेवा करिवे लगे।

सत्ययुग में इनकी या प्रकार की सेवा सूँ भगवान् प्रसन्न भए, और अपने चतुर्भुज-स्वरूप शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये भए, मस्तक पे किरीट, कानन

में कुण्डल, श्वेत, रक्त. कमल की वनमाला श्रीकंठ में धारण किये भए " विरजोम्बरं " अर्थात् वीररस की अधिकता प्रदिपादित करिवेवारे अंबर वस्त्र (मल्लकाछ) धारण किये भए, श्रीप्रभु ने उन्हें दर्शन दिये।

सृष्टि रचनो श्रमसाध्य है, तासूँ वीरता–द्योतनार्थ यह वीर–वेष धारण किये, यह अवांतर अर्थ है। मुख्य अर्थ :—पुष्टि में " साक्षान्मन्मथ–मन्मथः " अर्थात् काम कौ विजय कर अपनी अच्युतता–प्रगटार्थ मल्लकाछ धारण किये हैं। सो श्लोक :—

स तं विरजमर्काभ सितपद्मोत्पलस्रजम्। स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजाम्बरम् ॥९॥
किरीटिनं कुण्डलिन शङ्खचक्रगदाधरम्। श्वेतोत्पलक्रीडनकं मन स्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥

(भागवत स्कं० ३ अ० २१)

कर्दम ऋषि कूँ ऐसे स्वरूप के साक्षात दर्शन दिए, और स्वायंभुव मनु की पुत्री देवहूति सूँ विवाह करिवे की आज्ञा करी। बाद में कपिलदेवजी के अवतारुप आप ही पुत्ररूप सूँ प्रगट भए– इत्यादि कथा सविस्तर श्रीभागवत में प्रसिद्ध है।

वोही श्रीद्वारकाधीशजी को स्वरूप मूर्ति–रूप कर्दम प्रजापति तथा देवहूति के यहाँ बिन्दुसरोवर पर विराजतो हतो। फेर जब कपिलदेवजी के द्वारा देवहूतिजी कौ मोक्ष भयो, तब पीछे यह स्वरूप वा बिन्दुसरोवर में रह्यो। यह बिन्दुसरोवर सिद्ध-क्षेत्र में सरस्वतीजी सूँ वेष्टित है, और साक्षात् भगवान् के हर्ष के अश्रु [आँसून] की बूँद सूँ प्रगट भयो है। सो श्लोक :—

यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः। कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम्। ३८ ॥
तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम्। पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥

भा० तृ० स्क० २१ अ०

अपने शरण आए भए भक्त के ऊपर संपूर्ण कृपा कौ दान करती बखत श्रीभगवान् के नेत्रन में सूँ हर्ष के प्रेमाश्रु गिरे, वो ही बिन्दुसरोवर नामक कल्याणकारी पुण्य तीर्थ है।

वहाँ श्रीकपिलदेवजी के शिष्यन में सूँ एक ब्राह्मण शिष्य रहतो। वाको नाम देवशर्मा हतो। वाकौ पुत्र विष्णुशर्मा हतो। ये दोनों पिता-पुत्र महान् पवित्र कर्मनिष्ठ हते। इनकूँ समयान्तर में श्रीप्रभु द्वारकाधीश ने स्वप्न में आज्ञा करी

कि–" तुम्हारी भक्ति सूँ हम प्रसन्न हैं, सो हमकूँ बिन्दुसरोवर में सूँ लायकें हमारो पूजन सेवन करो "। यह स्वप्न, इन ब्राह्मणन ने महान् विष्णुयाग कियो ताकी परिसमाप्ति की रात कूँ भयो। सो यह सपना आते ही देवशर्मा ने उठिके अपने पुत्र कूँ जगायके सपना कौ वृत्तांत कह्यो। फेर प्रातःकाल वेग ही स्नान सन्ध्या सूँ निवृत्त होय दोनों पिता–पुत्र बिन्दुसरोवर में जाय श्रीप्रभुन कूँ बाहर पधराय लाए। सो परम मनोहर, कोटि कंदर्पलावण्य, श्याम, चतुर्भुजस्वरूप ब्रह्माजी के सेवा किये भए, ऐसे परम करुणानिधि–स्वरूप के दर्शन करते ही ये दोनों ब्राह्मण प्रेमविह्वल होय, साष्टांग प्रणाम करिकें उनकूँ अपने घर पधरायवे की प्रार्थना कर घर पधराय लाए, और अत्यंत श्रद्धा–प्रीति–सहित सेवा–अर्चन करिवे लगे।

ऐसे बहुत काल व्यतीत भयो, सो या ब्राह्मण कौ वंश चल्यौ तब ताँई, या देवशर्मा विष्णुशर्मा के ही वंश ने श्रीद्वारकाधीश की सेवा करी। सो इन श्रीप्रभुन की पूर्ण कृपा सूँ या देवशर्मा कौ तथा याके वंश कौ मोक्ष भयो।

अन्त में याके वंश में एक डोकरी रहि गई। याकौ नाम पार्वती हतो, सो इन श्रीद्वारकाधीश की अत्यंत भक्ति–श्रद्धा सूँ सेवा करती। याकी भक्ति सूँ श्रीप्रभु भी सानुभाव करावते, ऐसी भाग्यवान यह डोकरी हती। यह नित्य-नियम सूँ दत्तचित्त होय सेवा करती।

यह कथा पुराणांतर में प्रसिद्ध है।

॥ प्रथमोल्लासः समाप्तः ॥



द्वितीय उल्लास ।

या समय अर्बुदाचल (आबू पर्वत) में सूर्यवंशी नाभाग राजा के पुत्र परम भागवत, चक्रवर्ती राजा अम्बरीष राज्य करते हते। इनकी वैष्णवता की कथा सविस्तर श्रीमद्भागवत में प्रसिद्ध है। स्कंदपुराण के प्रभास खण्ड के अन्तर्गत अर्बुदखण्ड के तेरहवें अध्याय में, हृषीकेश-तीर्थ के माहात्म्य में अम्बरीष राजा की कथा या प्रकार है:—

पुरासीत्पृथिवीपालो ह्यम्बरीषो युगे कृते । हरिमाराधयामास तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ३ ॥

तस्मिँस्तीर्थे स राजेन्द्रः० ॥ ४ ॥ सहस्रे द्वे ततो राजन्० ॥ ५ ॥ सहस्रत्रितय राजन्० ॥६॥

दशवर्षसहस्रान्ते ततश्च नृपसत्तम ! तुतोष भगवान् विष्णुस्तस्यासौ दर्शनं ददौ ॥ ७ ॥

तृतीय श्लोक सूँ सात श्लोक पर्यंत, राजा ने तपश्चर्या करी सो कहे हैं:- प्रथम सत्ययुग में राजा अम्बरीष ने अत्यंत दुष्कर कष्टदायक तपश्चर्या करी। तामें प्रथम एक हजार वर्ष जितेन्द्रिय होयके स्वल्प आहार सूँ तपस्या करी। फेर दोय हजार वर्ष तांई केवल फलाहार लेके तप कियो। पीछे दोय हजार वर्ष पेड़ सूँ सूखे खिरे भये पत्ता को आहार करके तप कियो। फेर दोय हजार वर्ष केवल जलपान करके तप कियो। ता पीछे तीन हजार वर्ष केवल वायु-भक्षण करके तप कियो। ऐसे दश हजार वर्ष की तपश्चर्या पूरी भई; तब साक्षात् विष्णु भगवान् ने राजा की भक्ति-दृढता की परीक्षा लेवे के लिये इन्द्र को रूप धरिके दर्शन दिये, और मनवांछित फल माँगिवे की आज्ञा करी। सो श्लोक:—

कृत्वा देवपते रूपमारुह्यैरावतं गजं । अब्रवीद्वरदोऽस्मीति अम्बरीष नराधिपम् ॥ ८ ॥

इन्द्र उवाच—

वरं वरय भद्र ते राजन् ! यन्मनसीप्सितं । त्वां दृष्ट्वा भक्तिसंयुक्तमागतोऽहमसंशयम् ॥९॥

इन्द्ररूप भगवान् ने आज्ञा करी कि—"हे राजन् ! तुमकूँ भक्तियुक्त देखके में वर देवे कूँ आयो हूँ, सो मन में होय सो वर माँगो"।

अम्बरीष उवाच—

" मुक्तिं दातुमशक्तोऽसि त्वं च वृत्रनिषूदन ! तव प्रसादाद्देवेश ! त्रैलोक्यं मम वर्तते ॥१०॥
स्वागत गच्छ देवेश ! न वरो रोचते मम । सर्वथा दास्यते मह्यं वरं तुष्टश्चतुर्भुजः ॥
तदाहं प्रतिगृह्णामि गच्छ देव ! नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

अम्बरीष ने कही :–" हे देवेन्द्र ! तुम मुक्ति देवे कूँ तो असमर्थ हो, और तुम्हारी दया सूँ त्रिलोकी को राज्य तो मेरे भी है, तासूँ और वर माँगनो मोकूँ रुचै नहीं है । आपको मैं स्वागत करूँ हूँ, पाछे पधारो । जिन भगवान् की मैंने आराधना करी है, वे ही चतुर्भुज भगवान् प्रसन्न होयके मोकूँ अवश्य वर देंगे, और तभी मैं वर ग्रहण करूँगो । तुम भले जाओ, तुमकूँ नमस्कार है " ।

इन्द्र उवाच—

" वरं वरय राजर्षे ! यत्ते मनसि वर्तते । ब्रह्मविष्णुत्रिनेत्राणामहमीशो नृपोत्तम ! ॥ १२ ॥
अन्येषां चैव देवानां त्रैलोक्यस्याप्यहं विभुः । वरं वरय तस्मात्त्वं प्रसादान्मे सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥
प्रसन्ने मयि राजेन्द्र ! प्रसन्नाः सर्वदेवताः । कुरु मे वचनं राजन् ! गृह्यतां वरमुत्तमम् " ॥१४॥

तब इन्द्र बोले :–" हे राजेन्द्र ! जो तुम्हारे मन में होय सो वर माँगो, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा और भी देवतान को राजा मैं हूँ । और त्रिलोकी को अधिपति मैं हूँ । तासूँ प्रसन्न होयके मैं कहूँ हूँ कि–दुर्लभ सूँ दुर्लभ इच्छा होय सो वर माँगो । मेरी प्रसन्नता में ही सब देवतान की प्रसन्नता है । तासूँ मेरो वचन मानिके उत्तम सूँ उत्तम वर माँगो " ।

अम्बरीष उवाच—

राजा त्वं सर्वदेवानां त्रैलोक्यस्य तथेश्वरः । सप्तद्वीपवती-राजा अहं वृत्रनिषूदन ! ॥ १५ ॥
हृषीकेशस्य सद्भक्तं विद्धि मां तात ! निश्चयम् । आगतश्च हृषीकेशो वरं दास्यत्यसंशयम् ॥१६॥

अम्बरीष बोले–" सब देवतान के और त्रिलोकी के राजा जैसे तुम हो, वैसे मैं भी सातों द्वीपवारी पृथ्वी को राजा हूँ । और हृषीकेश भगवान् को सद्भक्त हूँ, यह निश्चय करिके जानो । और वे ही हृषीकेश भगवान् आयके मोकूँ अवश्य ही वर
यामें संशय नहीं है " ।

इन्द्र उवाच—

ददतो मम भूपाल ! न गृह्णासि वरं यदि । वज्रं त्वां प्रेरयिष्यामि वधाय कृतनिश्चयः ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा सहस्राक्षः सृक्किणी परिलेलिहन् । कुलिशं भ्रामयामास गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ १८ ॥

तस्येत्थं भ्राम्यमाणस्य महोत्पाताः बभूविरे । ततः पर्वतशृंगाणि विशीर्णानि समन्ततः ॥ १९ ॥

आवृतं नभनं मेघैर्विधुन्वानैर्मही तदा । न किञ्चिद्दृश्यते तत्र सर्वं सन्तमसावृतम् ॥ २० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु स राजा हरिवत्सलः । निमील्य लोचने स्वीये समाधिस्थो बभूव ह ॥२१॥

इन्द्र बोले :-" मैं वर देऊँ हूँ, और तुम वर नहीं लेवो हो तो तुमारे वध कौ निश्चय करिके मैं वज्र कौ प्रहार करूँगो (वज्र नाम के आयुध सूँ मारूँगो), ऐसें कहिकें क्रोध करिकें जीभ सूँ ओष्ठ चाटिकें, जेमने हाथ में वज्र लेकें घुमायो। ता समय अनेक उत्पात होयवे लगे, और पर्वतन के शिखर उड़ि-उड़िकें चारों आडी गिरवे लगे, और मेघ की गर्जना सूँ आकाश गूँजिवे लग्यो। पृथ्वी कंपायमान होय गई, चारों ओर ऐसो इन्द्र ने कोप कियो, तब राजा ने वाही समय वाही क्षण आँखें मीचिकें समाधि चढाई और अपने इष्टदेव कौ ध्यान करिवे लगे।

ततस्तुष्टो जगन्नाथस्साक्षात् प्रत्यक्षतां गतः । ऐरावतां स गरुडस्तत्क्षणात्समजायत ॥ २२ ॥

तमुवाच हृषीकेशो मेघगंभीरया गिरा । ध्यानस्थितं नृपश्रेष्ठं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २३ ॥

राजा की दृढ भक्ति देख प्रसन्न होय भगवान् ने साक्षात् प्रकट होयके दर्शन दिये, और गरुडजी अपने ऐरावत कौ रूप छोडके वाही समय गरुडजी होय गये। अपने इन्द्र के स्वरूप कौ मिटाय शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुजस्वरूप भगवान् ने दर्शन दिये, और वे अपनी मेघ की सी गंभीर वाणी सूँ ध्यानावस्थित राजा के प्रति आज्ञा करिवे लगे।

श्रीभगवानुवाच—

परितुष्टोऽस्मि ते वत्सानन्यभक्त जनेश्वर ! । वरं वरय भद्रं ते यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् । २४ ॥

श्रीभगवान ने कही :-" हे वत्स ! हे अनन्यभक्त ! राजन् ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयो हूँ। तेरो कल्याण होवे, और दुर्लभ से दुर्लभ जैसो चाहो वैसो वर माँगो "।

अम्बरीष उवाच—

यदि प्रसन्नो भगवान् यदि देयो वरो मम । संसाराब्धेस्तारणाय वरदो भव मे हरे ! ॥ २५ ॥

तृतीय उल्लास ।

ऐसो चिंतवन राजा अम्बरीष कर ही रहे हते। कछूक दिन पीछे इनके राज्य में एक ऐसो प्रसङ्ग भयौ, जाको विस्तार ग्रन्थान्तर में है, परंतु यहाँ भी लिखनो आवश्यक है। वह प्रसंग या प्रकार है—

एक समय श्रीसरस्वती नदी के तट पे सिद्धक्षेत्र (सिद्धपुर) गाम में तीन ब्राह्मण नित्य नियम सूँ प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल बहुत उत्तम रीत सूँ संध्या गायत्री तर्पणादि आह्निक त्रिकाल साधके करते हते। एक दिन वे तीनों ब्राह्मण मध्याह्न-संध्या करके अपने-अपने पित्रीश्वरन कौ तर्पण करते हते, सो तर्पण कौ जल लेवे साक्षात् दिव्य रूप सूँ विमान में इनके पित्रीश्वर आवते और तर्पण कौ जल लेके अपने लोक कों चले जाते। सो ये तीनों ब्राह्मण तर्पण करते हते, वा समय जलाशय में कोई जलजंतु दूसरे जलजंतु कूँ वध करतो हतो। सो उनमें सूँ एक ब्राह्मण ने देख्यो, और दूसरे सूँ कही कि—देखो वो जंतु वा दूसरे जंतु कूँ वध करे है। तब वाने कही हाँ, वाको कृत्य है सो करे है। ऐसे इन दोनों कौ ध्यान पितृ-भक्ति सूँ हटके जीव-हिंसा देखवे में गयो, तीसरे ने कछू देख्यो-सुन्यो नहीं। या ब्राह्मण के तो पितृ पाछे अपने लोक कूँ गए, और उन दोनों के पितृन के विमान ऊँचे न गये। क्योंकि उनकौ मन पितृभक्ति में सूँ चल-विचल होय गयो हतो। या प्रायश्चित्त सूँ उनके विमान पाछे चढ़े नहीं। याही सूँ अनेक ग्रंथन में लिखे हैं कि—ईश्वरभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति एकाग्र चित्त राखकें करे, तभी अभीष्ट फल मिले है।

जब इन पितृन के विमान ऊपर नहिं गए, तब यह दशा देखकें कितने ही मनुष्यन की भीड़ भेली होय गई। कोई देखवे आवे, कोई दर्शन करवे आवे, ऐसें होते यह खबर राजा अम्बरीप ताईं पहुँची। तब राजाने विद्वानन कूँ बुलायकें याको प्रकार पूंछ्यो। तब सबन ने विनय करी कि—महाराज! शास्त्र देखके विनती करे हैं। सो यहाँ शास्त्र विचार में लगे, वहाँ सरस्वतीजी के तट पे उन पितृन के दर्शन की भीड़ लग रही हती, उनमें जो-जो महानुभाव कर्मेष्ठी, ज्ञानवान् हते, उनकूँ उन पित्रीश्वरन के दर्शन भी होते हते।

[illegible]वशर्मा ब्राह्मण के वंश में एक डोकरी रह गई हती। सो नित्यनियम प्रमाण

अपने प्रभु श्रीद्वारकाधीश के विनियोग के लिये सरस्वती-तीर्थ के जल की गागर भरके ले जाती, सो वा दिन भी आई। भीड़ देख डोकरी बोली--भाइयो! काहे की भीड है? मोकूँ तीर्थजल की गागर भरवे जानो है। तब लोगन ने कही कि—दोय ब्राह्मणन के पितृन के विमान ऊँचे नहीं जांय हैं, तासूँ भीड़ होय रही है। तब डोकरी ने कही—मैं भी इनकों देखूँ तो सही, भीड़ हटाय दो। सो लोग थोड़े दूर हट गये। डोकरी सरस्वतीजी कूँ प्रणाम कर प्रभुन के लिये गागर भरके उन पितृन के विमान के पास आय उनसूँ बोली--हे पित्रीश्वरो! मैं मेरे श्रीप्रभुन के विनियोग निमित्त तीर्थ के जल की गागर लेके जाऊँ हूँ। सो याको एक एक पेंड़ (पाँवड़ा) को पुण्य तुमकूँ दऊँ हूँ, सो लेकें तुम अपने लोक कों जाओ। यह कह तीर्थप्रवाह में सूँ अंजुली भर एक एक अंजुली दोनों विमानस्थित पितृन कूँ दीनी। सो संकल्प लेते ही दोनों के विमान अपने लोक कों चले गये। और डोकरी अपने घर चली। सो जितनो जनसमूह वहाँ हतो, सब वहाँ डोकरी की भगवत्सेवा की सराहना और या कौतुक को आश्चर्य करवे लग्यो।

यह खबर राजा के यहाँ पहुँची। उत में विद्वानन ने शास्त्रविचार कर राजा सूँ विनय करी--महाराज! यह पित्रीश्वरन के विमान दर्श तथा पौर्णिमा पहले इनके लोक कों जाने चहियें। जो ये नहिं जायँ तो राज्य कूँ भारी होंयगें। इनके लोक में जायवे के लिये इनकूँ एक-एक अश्वमेध को पुण्य दियो जाय, तब ये इनके लोक कों जायँ। शास्त्रविचार में आयो सो अरज करी है।

राजा विद्वान्-सहित यह विचार कर ही रहे हते कि—अश्वमेध कूँ तो समय चहिए, और दर्श तो समीप आयो। इतने में राजा के यहाँ यह खबर पहुँची कि--महाराजाधिराज! सिद्धक्षेत्र में जो पितृन के विमान ऊँचे नहिं जाते, उनकूँ एक डोकरी ने अपने प्रभुन की सेवा की भक्ति के प्रभाव सूँ जलपान की गागर ले जायवे को एक-एक पाँवडा को पुण्य देकें उनके लोक पहुँचाय दिये।

यह सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न भए, और सब परिकर भी सन्तोप कूँ प्राप्त भयो। फेर राजा ने मन में विचार कियो कि--मेरे राज्य में ऐसे भी भक्त हैं, जिनकी भक्ति सूँ, भगवत्सेवा की उत्कृष्टता के प्रभाव सूँ पित्रीश्वर पितृलोक कूँ गए। विद्वान् सब बैठे ही हते। राजा बोले--विद्वज्जनो! देखो, भगवत्सेवा को प्रभाव उचित ही है। शास्त्र में कह्यो है—"पदे पदेऽश्वमेधानां फलम्"।

विद्वान् बोले :--किमाश्चर्यमेतत्। महाराज! यामें कहा आश्चर्य है? भगवत्सेवा कौ ऐसो ही प्रभाव है।

फेर राजा ने मन में विचारयो कि--ऐसी महानुभाव डोकरी तथा जिन प्रभुन की सेवा के प्रभाव सूँ मेरे राज्य कौ अनिष्ट मिटयो, उन प्रभुन को दर्शन करनो चहिये। यह मन में विचार, राजा आबू राजधानी सूँ सिद्धपुर गए। सो सिद्धपुर में वा डोकरी को घर सपीप ही पायो। राजा वाके घर में दोइ चार मनुष्यन सहित गए।

डोकरी नें श्रीद्वारकाधीश के भोग सराय टेरा खोल दियो। एक हटड़ा में प्रभु विराजे हते, वहाँ एक छोटो-सो फूल वाती कौ घृत-दीपक भी धरयो हतो। डोकरी कपूर की आरती करवे लगी।

राजा बहुत ही श्रद्धा सूँ दर्शन करते हते। और जा स्वरूप सूँ राजा कूँ आज्ञा दीनी हती, कि-" तेरे घर विराजूँगो "। उनहीं भगवान् के दर्शन भए। सो राजा तो तन्मय होकर आनन्द और आश्चर्यपूर्वक दर्शन करवे लगे।

डोकरी वासन वगैरह माँजवे की सेवा में लगी, वाकौ ध्यान राजा की आड़ी नहीं हतो। राजा दर्शन करते मन में सोचवे लगे कि---ये तो वे ही प्रभु हैं, जिनने मोकूँ वर दियो है। और जिनके पूजन सेवन की मेरी अत्यन्त इच्छा है। कदाचित् याही डोकरी द्वारा मेरो अभीष्ट सिद्ध होयगो।

इतने में डोकरी सेवा सूँ पहूँच अनोसर कराय निश्चिंत भई, तब राजा कूँ देख्यो। राजा ने डोकरी कूँ प्रणाम कियो। तब डोकरी बोली--राजेन्द्र! आप मो गरीबिनी के यहाँ कैसे पधारे? तब राजा ने डोकरी की प्रशंसा करी और श्रीप्रभुन की सेवा के प्रभाव सूँ राज्य कौ अनिष्ट दूर भयो ताकी सराहना करी।

फेर राजा ने कही कि--आप मेरे ऊपर कृपा कर इन प्रभुन की कछुक सेवा बताओ। सो भोग सामग्री कौ प्रबन्ध कर दऊँ। तब डोकरी ने कही-- राजेन्द्र! हम तो गरीब शुक्ल ब्राह्मण हैं। सो वैदिक वृत्ति सूँ अन्नोपार्जन करके भोग धरकें अपनो पोषण करें हैं। हमारे यहाँ राजवैभव कैसे निभे? तासूँ आप जाओ। फेर दर्शन कूँ पधारियो। फेर तुलसी चंदन आसिका राजा कों दीनी।

राजा प्रणाम कर अपने मुकाम आये, सिद्धपुर में ही रहे। राजधानी नहीं गए। वे नित्य नियम सूँ वा डोकरी के घर जाते और श्रीद्वारकाधीश के दर्शन कर मन्दिर में

जो सेवा डोकरी बताती सो करते और डोकरी की हरएक प्रकार सूँ प्रशंसा कर ताको मन संपादन करते।

ऐसे कछुक दिन व्यतीत भये, तब राजा की अत्यंत आर्ति देखके प्रभु अन्तर्यामी जान गए। सो एक दिन रात में डोकरी कों स्वप्न दियो कि—हमारी इच्छा या राजा के यहाँ पधारवे की है, हमने याकूँ वर दियो है, सो सवेरे ये तुमसूँ कहे सो मानियो।

यह सपना देख डोकरी जाग उठी। प्रभुन कौ ध्यान कर रात्रि में आप प्रभुन ने जो श्रम लियो ताको अपराध क्षमा करायो, और हाथ जोड़ ध्यान कर बोली—हे प्रभु! आज ताईं जैसो आपने अनुभव कराय आज्ञा करी सोई कियो। अब भी जो आज्ञा होयगी सोई करूँगी।

वाही रातकूँ राजाकों भी श्रीद्वारकधीश ने स्वप्न दियो, और आज्ञा करी कि—मैंने ही तोकूँ वर दियो है। तू संशय मत कर। मैं तेरी भक्ति सूँ प्रसन्न हूँ। तासूँ तू या डोकरी सूँ मोकूँ माँग ले। ये डोकरी मेरी परमभक्त है। तासूँ मैं याके अधीन हूँ।

यह सपना आते ही राजा चौंक उठे, और मनमें बहोत ही प्रसन्न भए। वेग उठ स्नान-सन्ध्या कर, नियमानुसार डोकरी के यहाँ जाय सेवा करी। फेर डोकरी भोग धरके बैठी, तब डोकरी कूँ प्रसन्न देखके राजा बोले—माता! मेरी यह इच्छा है कि—इन प्रभुन कौ आप कृपा कर मेरे माथे पधराओ। मैं बहुत ही अनुगृहीत होऊँगो। इनकी सेवा करवे की मेरे मन में अत्यन्त इच्छा है। तैसे इनही प्रभुन ने कृपा करके, अपनो जान, मोकूँ वर दियो है।

या पीछे राजा ने जो तपश्चर्या करी, और वर मिल्यो, सो सब डोकरी कूँ संक्षेप में कह सुनायो। तब डोकरी ने हँसके कही—राजेन्द्र! मोकूँ भी आज श्रीप्रभुन ने आज्ञा करी है। सो तुम शुभ दिन शुभ मुहूर्त में श्रीप्रभुन कौ मन्दिर सिद्ध करवाय श्रीप्रभु कूँ सुखेन पधराओ। जा कार्य में श्रीप्रभु प्रसन्न हैं, वह कार्य अपनकूँ श्रेय है। इनके भक्तन की रज की भी रज अपन हैं। सो भगवदाज्ञा सर्वदा अपन कूँ फलदायक है।

राजा पुनः श्रीद्वारकाधीश कौ ध्यान कर अत्यन्त प्रेमासक्त होय बड़े हर्ष सूँ डोकरी कूँ प्रणाम कर और आज्ञा माँग अर्बुदाचल (आबू) राजधानी में आए।

तृतीयोल्लासः समाप्तः।

चतुर्थ उल्लास ।



राजा अम्बरीष अपनी राजधानी आबू में आए, और आते ही उनने जो श्रीप्रभुन कौ मन्दिर सिद्ध करवायो हतो, वाकी जो कछु कोर-कसर रही हती, सो दूर कराई । महर्षि वशिष्ठजी सूँ सुदिन शुभ मुहूर्त दिखायके जहाँ-तहाँ कुकुमपत्रिकाएँ भेजीं । और अपने राज्यप्रासाद कूँ सर्वोत्तम मंगल-वस्तुन सूँ सुसज्जित करवे की आज्ञा दीनी । नगर में सब मांगलिक सजावट होयवे लगी । बजार, दुकान, दरवाजा सर्वत्र मंगल-सूचक ध्वजा, पताका, तोरण, वंदनवार, मंगलकलशादि सूँ आखी राजधानी विभूषित करी गई ।

चैत्र शुक्ल १ संवत्सर के दिन कौ मुहूर्त्त पाटोत्सव कौ हतौ । वाके एक दोय दिन पहले श्रीप्रभु श्रीद्वारकाधीश के दर्शनार्थ अति उत्साह सूँ पधरायवे के लिए आमंत्रित सभागण, नागरिकगण, श्रेष्ठिगण, सब वस्त्रालंकार पहिर राजाज्ञानुसार राजमहल में उपस्थित भये, और बाहर सवारी की सब वस्तु लिए छत्र चामरादि सम्पूर्ण राज्यचिन्ह सहित परम हर्षध्वनि करवे लगे । फौज, घोडा, हाथी, ऊँट, रथ, गाडा, गाडी, म्याना, पालकी इत्यादि चक्रवर्ती राजा के यहाँ के साहित्य कौ कहाँ तक लिखनो । राज्य में अनिर्वचनीय तैयारी होय रही हती ।

समस्त परिकर तथा महर्षि, शास्त्री, ज्योतिषी, वैदिक ब्राह्मण, उपाध्याय, गंधर्वादि के समाज-सहित राजा अम्बरीष परम हर्ष सूँ श्रीद्वारकाधीश कूँ पधरायवे सिद्धपुर चले । वहाँ पहुँच के डोकरी कूँ प्रणाम करके विनंती करी कि-सब साहित्य-सहित मैं उपस्थित हूँ । तब डोकरी ने बड़े हर्ष सूँ राजा सूँ श्री प्रभु के पधरायवे की कही । और अपने घर की सब व्यवस्था राजा के अधीन करी ।

राजा अम्बरीष ने डोकरी कों संग लेके बडे ही उत्साहपूर्वक श्रीद्वारकाधीश कूँ सुखपाल में पधराए ।

राजा के निर्देश सूँ सिद्धक्षेत्र सूँ अर्बुदाचल (आबू) राजधानी में सवारी पधारी । वा समय की शोभा कछु लिखते नहीं बने । सम्पूर्ण नगर की, राजसदन की

शोभा को पार नहीं। खास राजद्वार पे पहुँचते ही समस्त राजभवन जय-जय शब्दध्वनि सूँ गूँज गयो। मंगलकलश लिये नागरिक युवतीन के गान को कलरव अत्यन्त ही सुहावनो लगतो हतो। पुण्याहवाचन की वस्तु लिये उपाध्याय, पंड्या वृत्तेश्वरी सब उपस्थित हते। राजद्वार के ऊपर दुंदुभी (नगारखाना) अपने घोर नाद राजमन्दिर की शोभा में वृद्धि कर रहे हते। राजा महर्षि-मंडल-सहित अशोकपत्र सूँ पुण्याहवाचन मंत्र द्वारा पालकी के ऊपर मार्जन करवे लगे। वा समय बंदीजनन के बंध काट दिये गए, और भाट-चारणादि कूँ यथोचित दानादि दिये गए। राजा ने चैत्र शुद्ध १ के दिन ठीक मध्याह्न अभिजित-मुहूर्त में श्रीद्वारकाधीश कूँ पाट बैठाए (सिंहासनारूढ किये)।

यह प्रसङ्ग स्कंद-पुराण के प्रभासखंड के अन्तर्गत अर्बुदखंड के तेरहवें अध्याय में है:-- श्लोक,

" ततः कालेन महता भगवान् विष्णुमन्दिरे।
तेनैव वपुषा प्राप्त सपुत्र सहबान्धवः॥ राजाऽर्चां कारयामास गन्धपुष्पानुलेपनैः॥३५॥
तदारभ्य महाराज! क्रियायोगो धरातले। प्रवृत्त प्रतिमाकार काले च कलिसञ्ज्ञके॥३६॥
यस्तु पूजयते भक्त्या हृषीकेश नवार्बुदे। स याति विष्णुसालोक्यं प्रसादाच्च हरेर्नृप!।३७।"

--इत्यादि

"राजा कों वरदान दिये बहुत काल पीछे भगवान् श्रीद्वारकाधीश अपने वाही स्वरूप सूँ वा भगवन्मन्दिर में विराजमान भए। राजा अम्बरीष अपने पुत्र-परिवार-बन्धुवर्ग सहित वा स्वरूप की गंध-पुष्पादि उपचार सूँ सेवन पूजन करवे लगे। या पृथ्वी में प्रतिमा-पूजा को प्रचार (आरंभ) इन्हीं स्वरूप सूँ भयो। सो अद्यावधि प्रचलित है। इन भगवान् की भक्तिपूर्वक जो सेवा-पूजा करे हैं, सो भगवान् की कृपा सूँ सालोक्य मुक्ति कूँ प्राप्त होय है।"

यहाँ नित्य क्रम की सेवा डोकरी करती, और राजा वाको परिचारकी करते हते। ता पीछे ऐसे कितनो ही समय व्यतीत भयो। डोकरी की अत्यन्त वृद्धावस्था होय गई। सो राजा सूँ वानें कही कि-राजन्! अब मेरी अन्तिम अवस्था है, आपने प्रभुन को राजवैभव सब मेरे भरोसे कर राख्यो है, सो अब आप सम्हार लो। तब राजा ने सब वस्तु सम्हार लीनी, और कही कि-माता! आपसूँ जो बने सो सेवा करयौ करो।

वा समयसूँ राजा अति भाव-भक्ति सूँ प्रतिदिन श्री की सेवा में तत्पर होते भए। जासूँ उनकौ दिन-प्रतिदिन प्रताप बढ़वे लग्यो। अत्यत दृढ़ भक्ति सूँ सेवा करबे के कारण सकुटुम्ब सपरिवार राजा कौ सब समय भगवत् सेवा में ही व्यतीत होयवे लग्यौ, जासूं राज्य-कार्य में कितनेक विक्षेप होयवे लगे। तब राजकर्मचारीन ने राजा सूँ विनय करी। सो राजा के चित्त में परिताप भयो, कि--ये सब लौकिक में डूब रहे हैं, मेरी सेवा में विक्षेप करें हैं। सो भगवत्सेवा न छूटे, या विचार सूँ राजा उदास रहवे लगे। प्रभु साक्षात् अन्तर्यामी श्रीद्वारकाधीश ने ये बात जानके राजा सूँ आज्ञा करी--" मैं तेरी सेवा या भक्ति सूँ तथा दृढ आश्रय सूँ प्रसन्न हूँ। तू अपने राजकार्य की चिन्ता मत कर। म सुदर्शनचक्र कूँ आज्ञा दऊँ हूँ, वे तेरे सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य की रक्षा करेंगे। तू मेरी सेवा प्रसन्नता सूँ कर। "

यह सुन राजा साष्टांग प्रणाम कर राज्य-कार्य सूँ निर्भय भए। यावत राज्य-कार्य सुदर्शन चक्र करवे लगे, जासूँ राजा कौ और भी प्रताप बढ़्यौ। राजा के यहाँ श्रीद्वारकाधीश के भोग-राग कौ वैभव इतनो हतो कि-आरोगवे को वस्तुन में डारवे की कालीमिर्च सवा मन होतो हती और मिष्टान्न इत्यादि न्यारो अरोगते। भोग अरोगे पीछे वह महाप्रसाद राजा-रानी सपरिवार और भाई, वेटा, प्रजा सब आखौ राज्य लेतो। कोई के यहाँ रसोई नहीं होती हती, सब प्रसाद सूँ ही तृप्त होते हते। या उपरांत गाय, बैल, घोड़ा वगेरेन के भी महाप्रसाद बचतो तब जातो। ऐसो श्रीद्वारकाधीश कौ प्रताप राज्य पर रक्षा करतो। और राजा अति दीनता सूँ श्रीप्रभुन की निरन्तर सेवा करते। ऐसे कितनो ही काल व्यतीत भयौ। ऋद्धि-सिद्धि-वृद्धि सुख-सपत्ति सूँ राजा रहते हते।

॥ चतुर्थोल्लासः समाप्तः ॥



पञ्चम उल्लास।



एक समय राजा ने रानीन के सहित भगवान के प्रसन्नार्थ एकादशी व्रत कौ नियम लियो। यह कथा श्रीमद्भागवत–नवमस्कंध–चतुर्थाध्याय में विस्तार सूं वर्णित है। यहाँ वा कथा कौ संक्षेप मात्र लिखनो आवश्यक है :—

एक समय राजा अम्बरीप सपरिवार श्रीप्रभुन कौ संग लेके श्रीमथुरापुरी आए। और श्रीमथुरा में श्रीयमुनाजी के तट पे राजा ने अपने रहिवे कौ स्थान नियत कियो, और एकादशीव्रत कौ नियम लियो। श्लोक :—

आरिराधयिपुः कृष्ण महिष्या तुल्यशीलया। युक्तः संवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ।।२९।
व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्र समुपोपित। स्नातः कदाचित् कालिन्द्या हरिं मधुवनेर्चयत्
॥ ३० ॥

इन सब श्लोकन के प्रमाण सूँ कार्त्तिक सुदी ११ कों ही राजा रानी कौ व्रत वर्ष भर कौ समाप्त भयो, सो दंपति श्रीयमुना महारानीजी में स्नान कर, विधिपूर्वक पूजन दानादि कर, परम हर्षसूँ श्रीद्वारकाधीश के सेवन–पूजन करवे में तत्पर भए। और परम उत्साह सूँ ब्राह्मणनकों अनेक गोदान दिए, तथा असंख्य ब्राह्मणनकों भोजन कराए। श्रीभागवत ९ स्कंध के ४ अध्याय श्लोक :—

गवा रुक्मविपाणीना रूप्याङ्घ्रीणा सुवाससाम्। पय शीलवयोरूपवत्सोपस्कर सपदाम् ।।३३।।
प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि पट् ॥

या प्रमाण राजा नें दान तथा ब्राह्मण भोजन कराए। राजा ब्राह्मणनसां आज्ञा लेके पारण करवे घर में गए, इतने में दुर्वासा ऋषि अतिथि होयके आए। सो राजा ने यथाविधि अभ्युत्थानादि अर्घ्यपाद्य करके चरण में दोनों हाथ लगाय प्रार्थना करी– महाराज ! आप हू भोजन करिये। तब दुर्वासा ऋषि ने राजा की बहुत ही प्रशंसा करी, और कही कि– मेरो आवश्यक आह्निक बाकी है, सो श्रीयमुनाजी पे करके मैं आऊँ हूँ।

ऐसे कहिके ऋषि श्रीयमुनाजी के तट पे जाय स्नान कर गायत्री कौ जप करवे लगे।

दुर्वासा तो वहाँ तट पे आह्निक करे हैं, और यहाँ राजा के इतनी देर में द्वादशी एक घड़ी वा समय पारणा में बाकी हती। सो महाधर्मवान् राजा ब्राह्मणन को लेके धर्म कौ विचार करवे लगे कि—ब्राह्मण अतिथि आयो है, वाकूँ खवाए विना खानो यह दोष द्वादशी के पारणा में है। दुर्वासा तो अभी आये नहीं हैं। न जाने उनकूँ कितनो समय और लगेगो ? और द्वादशी अब एक ही घड़ी शेष रही है। सो आप सबन की आज्ञा होय तो मैं केवल जलपान करके पारणा करूँ। जो—अतिथि कौ अनादर हू न होय, और मेरो व्रतभंग हू न होय। द्वादशी व्यतीत होय जायगी तो त्रयोदशी में पारणा करवे सूँ मेरो व्रत भंग होयगो। तासूँ जलपान में निषेध न होय तो आज्ञा दीजिये।

तब ब्राह्मणन ने सम्मति दीनी कि—राजा ! जलभक्षण कौ ऐसो नियम है कि—जो निर्जल व्रत करे उनकों तो जल पीनो सो भोजनवत् है, और साधारण व्रतधारेन कों जल पीनो भोजन-संज्ञा में नही है। तासूँ अतिथि कों भोजन कराए विना तुम जलपान करो सो कछु भोजन की संज्ञा में नहीं होयगो। तासूँ भले ही आप जलपान करो। तब राजा ने जलपान कियो।

जलपान करके राजा श्रीद्वारकाधीश कौ चिन्तवन करते ब्राह्मण के आयवे की प्रतीक्षा करवे लगे। इतने में दुर्वासा आए। राजा ने स्वागत कियो। सो दुर्वासा ने अपनी बुद्धि सूँ राजा की चेष्टा पहचानी कि—राजा ने पारणा कर लीयो है। यह जान दुर्वासा मारे क्रोध के काँप उठे। एक तो स्वभाविक ही यह क्रोध के पुंज, फेर आज ये भूखे ब्राह्मण, सो इनके क्रोध की परिसीमा न रही। राजा हाथ जोड़ के ठाढे हते उनसों भृकुटी चढ़ाय टेढ़ो मुख कर ऋषि बोले—बड़े आश्चर्य की बात है ? यह क्रूर लक्ष्मी पायके उन्मत्त होय रह्यो है। हम तो जानते कि ये बहुत वैष्णव हैं, भक्त है, परन्तु यह तो विष्णु कौ अभक्त है. और ईश्वरपने कौ माने है कि—मैंने खाय लियो तो कहा भयो। जो मैं अतिथि आयो सो मोकों जिमाये विना ही याने पारणा कर लियो। याकौ फल मैं तोकों शीघ्र ही दिखाऊँगो।

ऐसे कहके दुर्वासा ऋषि ने क्रोध के मारे अपने माथे में सूँ एक जटा उखाड़ लीनी, और वा जटा की एक कृत्या कालाग्नि नामक निकाली। वो कृत्या हाथ में खड्ग लिए राजा के ऊपर क्रोध करकें चली। सो वाके चलवे सूँ पृथ्वी कंपायमान होय गई। परन्तु वाकों देखके राजा एक पैंडहू चल-विचल न भए। अपने

सुदर्शनधारी प्रभु को दृढ़ भरोसा राख ठाढे ही रहे। सुदर्शनजी तो सर्वदा राजा की रक्षार्थ संग ही रहते, सो श्रीसुदर्शनजी ने क्रोध करकें वा कृत्या कूँ भस्म कर दीनी।

या उपद्रव और अपने प्रयास कों निष्फल देख प्राण बचायवे की इच्छा करके दुर्वासा भागे। पीछे-पीछे सुदर्शन दुर्वासा कूँ भस्म करवे के लिए महान् दावानल के समान तेजोमय रूप करकें दौडे।

यह देख दुर्वासा प्रथम सुमेरु की गुफा में छिपवे गए। फेर चारों दिशान में गए। फेर पृथ्वी में गए, नीचे के लोक में गए, समुद्रन में गए, और ऊपर के लोकन में गए, लोकपालन के पास गए, स्वर्ग में गए, जहाँ-जहाँ गए वहाँ-वहाँ सुदर्शन सूँ बचकें रक्षा नहीं मिली।

जब कहीं कोई रक्षा करवेवारो न मिल्यो, तब ब्रह्माजी की शरण जाय कह्यो कि--हे आत्मयोनि! या अजित सूँ मेरी रक्षा करो। तब ब्रह्माजी ने कही कि--जो भगवान् मेरे स्थान कूँ सब विश्वसहित द्विपरार्ध पीछे एक भृकुटि चढ़ायवे मात्र सूँ भस्म करवे की इच्छा राखे हैं, उन कालात्मा भगवान् कौ अपराध होयगो, यदि मैं क्षमा करूँगो तो।

ऐसे जब ब्रह्मा ने नाहीं करी, तब चक्र सों तापित दुर्वासा महादेवजी के पास गए। तब महादेवजी ने कही-बेटा। हमारी सामर्थ्य नहीं है। और मेरे सरीखे बहुत से जीव औरहू कितने जन्म लेहैं, और लय होय जाय हैं। अनेक बड़े-बड़े डोलें हैं। तथा सनत्कुमार आदि जिन भगवान् की माया कों नहीं जाने हैं उन भगवान को यह शस्त्र है। सो हमकूँ भी दुर्विषह है। यासूँ तो भगवान् की शरण जा, वे तेरो कल्याण करेंगे। तब दुर्वासा निराश होयके वैकुण्ठ में पहुँचे। अजितशस्त्र की अग्नि करके जरते भये दुर्वासा भगवच्चरणारविंद में पडे। उनको शरीर काँपवे लग्यो। ऐसी दशा में वे बोले—

हे अच्युत! हे अनन्त! हे प्रभु! मैं अपराध करवेवारो हूँ ताकों आप जानो हो। और आपके जो प्यारे भक्त हैं, तिनको विना जाने जो मैंने अपराध कर्‌यो, ताको प्रायश्चित्त आप करायवेकूँ योग्य हो। कारण, आपके नाम स्मरणमात्र सूँ नरक में गिरे भए प्राणी हैं, वे नरक सों मुक्त होय जाय हैं। तब भगवान ने आज्ञा करी—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज! साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥

(भाग० ९ स्कं०, ४ अ०)

षष्ठ उल्लास ।



या प्रकार राजा अम्बरीष वे तथा उनके पुत्रादिकन ने अति श्रद्धा सूँ श्रीप्रभु की सेवा करी। वहुत दिन बाद राजा अम्बरीष कौ अवमान भयो, सो श्रीप्रभु की सेवा के प्रभाव सूँ उनकौ मोक्ष भयो।

उनके पीछे राजा के पुत्र पौत्रादिक ने भी अत्यंत भाव-भक्ति सूँ सेवा करी।

वहुत काल के अनंतर श्रीद्वारकाधीश राज्यगुरु वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पधारे। तब वशिष्ठजी ने श्रीप्रभु सूँ प्रार्थना करी कि-आप कोटि ब्रह्मांड के नायक और सर्वभवन-समर्थ हो, आपकी लीला तथा महिमा कौ पार कोई नहिं पाय सके है। जाके ऊपर आप अनुग्रह करो वोही यत्किंचित आपके स्वरूप कों जान सके है। हे प्रभु ! राजा के यहाँ तो आपने, अनेक प्रकार कौ वैभव अंगीकार कियो, पर मेरी या कुटी में तो तुलसी-पत्र ही है।

यह सुनके प्रभु हँसके आज्ञा किये कि-तुमारे यहाँ तुलसी-पत्र सूँ ही हम प्रसन्न हैं। तब वशिष्ठजी ने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कियो। वे वेदविधि सूँ षोडशोपचार सों पूजन करवे लगे। ऐसे वहुत काल पर्यंत वशिष्ठ मुनि के यहाँ प्रभु विराजे।

कुछ समय बाद रघुवंश में राजा दशरथ भए। इनकी कथा रामायण में विस्तार सूँ प्रसिद्ध है।

एक समय गुरु वशिष्ठजी अपने शिष्य राजा दशरथ के पास आए। राजा ने अर्घ्यपाद्य कर उच्चासन पे वेठाय स्वागत कियो। कछु भक्तिविषयक प्रसंग चलवे में ऋषि ने राजासूँ राजा अम्बरीष तथा श्रीद्वारकाधीश कौ वृत्तान्त कह्यो। यासूँ राजा की भक्ति बढ़ी। उनने ऋषि के आश्रम सूँ श्रीद्वारकाधीश कूँ अपने राजमहल में परम हर्ष सूँ पधराये।

राजा दशरथ वहुत भक्तिभाव-पूर्वक रानी कौशल्यासहित श्रीद्वारकाधीश की सेवा करवे लगे। दोनों दम्पति श्रीप्रभु सों पुत्रोत्पत्ति की कामना करते। तामें रानी कौशल्या तो अति दीन होय बारंबार पुत्र माँगती।

श्रीद्वारकाधीश प्रभु इनकी शुद्ध भक्ति सों प्रसन्न हते, और साक्षात् भी अनुभव करावते। तब एक दिन रानी कों आज्ञा करी कि—तू राजा सूँ कहिकें वशिष्ठ ऋषि के द्वारा पुत्रकामेष्टि अश्वमेध यज्ञ करावो, तेरी याचना सिद्ध होयगी। तब रानी ने राजा सूँ प्रभुन की आज्ञा कह सुनाई। सो राजा बहुत प्रसन्न भए। और वशिष्ठजी सों यज्ञ करायवे की प्रार्थना करी।

वशिष्ठजी द्वारा पुत्रकामेष्टि अश्वमेध यज्ञ तथा रामावतार की सविस्तर कथा वाल्मीकीय तथा तुलसी-कृत रामायण में प्रसिद्ध है।

यज्ञ के बाद श्रीरामचन्द्रजी कौ प्रागट्य भयो। जब श्रीरामचन्द्रजी दोय वर्ष के भए वा समय कौ थोड़ो सो प्रसंग यहाँ लिखे हैं। तुलसी-कृत रामायण बालकांड तरंग ३५ की चौपाई।

बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा, सकल नगरवासिन सुख दीन्हा।
लै उछंग कबहुँक हुलरावै, कबहुँ पालने घालि झुलावै॥ ८॥

पाठ—भेद देखो इन्डियन प्रेस तृ० सं० पत्र १८६

॥ दोहा ॥

प्रेममगन कौशल्या, निस दिन जात न जान।
सुत-सनेह-बस माता, बालचरित करि गान॥ ९॥

॥ चौपाई ॥

एक बार जननी अन्हवाए, करि सिंगार पलना पौढ़ाए।
निजकुल इष्टदेव भगवाना, पूजा-हेतु कीन्ह अस्नाना॥ १०॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा, आपु गई जहँ पाक बनावा।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई, भोजन करत देख सुत जाई। ११॥
गइ जननी सिसु पहिं भयभीता, देखा बालक सयन पुनीता।
बहुरि आइ देखा सुत सोई, हृदय कंप मन धीर न होई॥ १२॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा, मतिभ्रम मोर कि आन बिसेखा।
देखि राम जननी अकुलानी, प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥ १३॥

॥ दोहा ॥

दिखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम-रोम प्रति लागेऊ कोटि-कोटि ब्रह्मंड ॥ १४ ।

॥ चौपाई ॥

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन, बहुगिरि सरित सिन्धु महि कानन।
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ, सोउ देखा जो सुना न काऊ। १५ ॥

देखी माया सब विधि गाढी, अति सभीत जोरे कर ठाढी ।
देखा जीव नचावइ जाही, देखा भक्ति जो छोरइ ताही ॥ १६ ॥

तनु पुलकित मुख वचन न आवा, नयन मूँदि चरनहिं सिर नावा।
विस्मयवति देखि महतारी, भये बहुरि सिसु-रूप खरारी ॥ १७ ॥

अस्तुति करि न जाय भय भाना, जगतपिता मैं सुत करि जाना।
हरि जननी बहु विधि समुझाई, यह जनि कतहू कहसि सुनु भाई ॥१८॥

॥ दोहा ॥

बार-बार कौशिल्या विनय करी कर जोरि।
अब जनि कबहूं व्यापई प्रभु यह माया तोरि ॥ १९ ॥ इत्यादि।

इन दोहा चौपाइन को अर्थ स्पष्ट ही है, तथापि भावार्थमात्र लिखे हैं :—

जब श्रीरामचन्द्रजी दो वर्ष के भए तब अनेक बालचरित्र सूं अपनी माता कूँ सन्तोष करावते। एक समय रानी कौशल्या श्रीरामचन्द्रजी कों पलना में पौढाय, रसोई में सामग्री सिद्ध करके श्रीद्वारकाधीश कों भोग धरवे गई। फेर कछुक वस्तु रह गई सो फेर दूसरी बेर धरवे गई। वे टेरा के पास जाते ही कहा कौतुक देखें हैं कि-बालक श्रीरामचन्द्रजी श्रीद्वारकाधीश के संग एक थाल में अरोग रहे हैं।

यह देख रानी कों बहुत पश्चात्ताप भयो कि-बालक प्रभु के अरोगते में कैसे चल्यो आयो, श्रीप्रभुन कों अरोगवे भी नहीं दीने। पलना के पास कौनसी दासी हती, जाने सावधानी नहीं राखी, देखूँ तो सही।

ऐसे मन में विचार करते पलना के पास आई। देखें तो बालक पलना में जैसे को तैसो लेटो भयो माता कों देख किलककिलक खेल रह्यो है। रानी फेर टेरा

के पास गई। सो देखें हैं तो पूर्ववत् बालक श्रीप्रभुन के संग अरोग रहे हैं। यह देख रानी बहुत ही चकित भई और विचारवे लगीं कि—बालक तो पलना में खेले है। यहाँ मैं यह कहा कौतुक देख रही हूँ। ऐसें अति भयभीत होय फेर पलना के पास जायके देखें तो बालक पूर्ववत् खेल रह्यो है। माता कूँ विस्मयमय देखकें श्रीरामचन्द्र भगवान् हँस दिये। तो भी रानी समझी नहीं।

जब रानी कौशल्या आतुर होय फिर डेरा के पास गई, तब श्रीद्वारकाधीश ने रानी कूं आज्ञा करी— रानी! तू विस्मय में क्यों है? कछु विस्मय मत कर। तैंने जो वर माँग्यो सो सिद्ध भयो है, यह और हम एक ही स्वरूप हैं? मैं यहाँ पुत्र-भाव सूँ तेरे घर आयो हूँ। तब रानी कों ज्ञान उत्पन्न भयो कि—अरे! जगन्नियंता जगतपिता भगवान् कौ स्वरूप मैं भूल गई, और उनकूँ अपनो पुत्र जान्यो।

ऐसे तर्क-वितर्क कर रानी ने स्तुति करी सो रामायण में प्रसिद्ध है।

तब सूँ श्रीद्वारकाधीश की सेवा रानी कौशल्या अति श्रद्धा सूँ करवे लगीं, और "श्रीरामचन्द्रजी भी ईश्वर हैं" यह ज्ञान भी राखवे लगीं।

श्रीरामचन्द्रजी कौ वनवास, राज्याभिषेक, राज्य-पालन इत्यादि राम-चरित रामायण में प्रसिद्ध है।

जब श्रीरामचन्द्रजी समस्त अयोध्या कूँ पुष्पक विमान में ले पधारे, तब उनके बाद उनके पुत्र लव-कुश ने राज्य कियो। इनके बाद महर्षि वशिष्ठजी श्रीप्रभुन कूँ पाछे अपने आश्रम में पधराय लाए।

कछुक समय पीछे महर्षि भारद्वाज वशिष्ठजी के यहाँ आए, और श्रीप्रभुन की सेवा करवे की इच्छा प्रकट करी। सो श्रीप्रभुन की इच्छा जानि वशिष्ठजी ने भारद्वाज ऋषि के माथें पधराए। सो बहुत काल पर्यंत भारद्वाज ऋषि के आश्रम में विराजे। फेर कश्यप ऋषि भारद्वाज के यहाँ आए। और श्रीप्रभुन की सेवा की प्रार्थना करी। सो श्रीप्रभुन की इच्छा जान महर्षि भारद्वाज ने कश्यपजी के माथें पधराए। सो बहुत काल पर्यंत कश्यपजी के आश्रम में विराजे। फेर महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासजी आए। कश्यपजी सूँ कही कि—तुमकूँ तो भगवदाज्ञा भई है, सो तुमकूँ तो व्रज में जन्म लेनो ही पड़ेगो। तासूँ यह प्राचीन निधि मोकूँ पधराय दो। तब कश्यपजी ने श्रीद्वारकाधीश कों व्यासजी के घर पधराए।

॥ षष्ठोल्लासः समाप्तः ॥

सप्तम उल्लास।



व्यासजी श्रीद्वारकाधीश की सेवा वैष्णव-संप्रदाय-विधि सूँ करवे लगे। ऐसे बहुत काल व्यतीत भयो, तब एक समय श्रावण शुक्ल ३ रविवार के दिन रात्रि को आर्ती करायके श्रीप्रभुन कूँ पौढायकें आप ही के ध्यान में व्यासजी समाधि लगायकें बैठे हते। उनकों समाधि में ऐसो अनुभव भयो कि-श्रीयमुनाजी कौ प्रवाह एक संग बढकें व्यासाश्रम के चारों आडी (जहाँ प्रभु विराजते हते वहाँ तक) चढ़्यो ही आवे है। यह ध्यान में देख व्यासजी कूँ अत्यन्त ही चिन्ता भई, सो वे घबरायकें ध्यान में सूँ उठकें मन्दिर की आड़ी दौड़े, और कछू भी विना सोचे विचारे प्रेमवश होय भगवान् की कृति के ज्ञान कूँ भूलकें जल के भय की आतुरता में मदिर के कपाट (किंवाड़) खोल दिये। किंवाड़ खुलते ही श्रीद्वारकाधीशजी के दर्शन श्रीयमुनाजी सहित भए, दोनों युगल स्वरूप परस्पर हास्य-विनोद करे हैं, वहाँ और कछु जलतरङ्ग तो है नहिं। तब व्यासजी कूँ मन में विस्मय भयो, और वाही क्षण ज्ञान उत्पन्न भयो कि-अरे ! 'मै विना जाने अनवसर में श्रीप्रभुन के विहार में बाधक भयो' इत्यादि पश्चात्ताप करवे लगे। प्रभु तो अंतर्यामी हैं। सो व्यासजी के साम्हनें देखकें हासयुक्त आज्ञा करत भए कि-व्यास ! तुम मन में कछू सकुचो मत, यह अनुभव तुमकूँ करावनो हतो। सो अब सूँ सेवन-पूजन करियो'। तब व्यासजी अपने परम भाग्य मानि साष्टाङ्ग तीन प्रणाम किये। अनवसर में अनजाने अपराध पड्यो, ताकी क्षमा माँगी। पाछे किंवाड मङ्गल करि दिये। ऐसे अनेक अनुभव प्रभु व्यासजी कों करावते। ऐसे बहुत काल व्यतीत भयो।

एक समय श्रीद्वारकाधीश ने व्यासजी सूँ आज्ञा करी कि-'मथुरा में सूरसेन यादव के यहाँ वसुदेवजी कौ और गोकुल में नन्दरायजी कौ जन्म भयौ है। इन दोनोंन ने हमारी आराधना करके हमारे सदृश पुत्र-प्राप्ति की याचना करी, सो हमने उनकूँ प्रसन्न होयकें वर दियो है, तासूँ हमारो प्रागट्य वसुदेवजी के यहाँ होयगो। वहाँ सूँ व्रज में जायकें गोलोक की सब लीला कौ अनुभव अपने अंतरंग भक्तन कूँ

कराऊँगो। पश्चात् मथुरा में कंस कौ वध करके द्वारका में राजलीलादि करूंगो। वा समय युधिष्ठिर प्रभृति पांडव मेरे भक्त होयँगे, उनकी सहायता हम करेंगे। सो सब कथा श्रीमद्भागवत पुराण में तुम्हारे द्वारा प्रकट होयगी'।

याही आज्ञा के अनुसार कृष्णावतार भयो। व्यासजी कूं भी समाधिरूप में सब लीला कौ अनुभव भयो। सो समाधिभाषारूप श्रीमद्भागवत तथा भारतादि ग्रंथ में प्रसिद्ध ही है।

फेर एक समय व्यासजी ने प्रभुन सूं प्रार्थना करी कि—हे अखिलजगन्नियन्ता! दिनप्रतिदिन युगधर्म कौ तो परिवर्तन होतो जाय है, आगे कलियुग आवेगो, मनुष्यन की वृत्तियें धर्म, तप, दया, दानादि सूं प्रतिकूल होती जायंगी। ऐसे समय में आपकी सेवा और हमारो ऋषि-धर्म कैसे निभेगो?

तब श्रीप्रभुन ने आज्ञा करी कि-तुम्हारो कहनो सत्य है। तुम्हारे यहाँ जो यह हमारी अर्चा (मत्स्वरूप) विराजे है, सो हस्तिनापुर के राजा युधिष्ठिर जो परम धार्मिक और मेरे अंतरंग भक्त होवँगे उनकूं पधराय दीजो। या हमारे स्वरूप द्वारा उन पांडवन-कों अधिक श्रेय होयगो। तुम यहाँ हिमालय में अपनो आश्रम नियत कर एकान्तवास करिकें अपनो अभीष्ट संपादन करियो।

ऐसी भगवदाज्ञा भए पीछे नियत समय पे कौरव-पांडवन कौ विरोध भयो, और द्यूत में पांडव हारे। उन्हें बारह वर्ष कौ वनवास करनो पड्यो। वा समय श्रीकृष्ण भगवान् तो द्वारका में विराजते हते। उनके वियोग में पांडव अत्यन्त दुःखपूर्वक तीर्थाटन, भगवद्भजन और कथाश्रवणादि करकें दिन व्यतीत करते हते।

ऐसे में एक समय पांडवन कूं आश्वासन देवे लियेके महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासमुनि वन में उनके पास आए। पांडवन ने उनको स्वागत कियो विधिवत् अर्घ्यपाद्यादि, और अपने वनवास के दिन कैसे व्यतीत होयँ, और शत्रुन सूं विजय कैसे प्राप्त होय? इत्यादि विषय पूँछ्यो। और चिरकाल तक हम सबन के पास ही विराजो, ऐसी प्रार्थना करी।

तब व्यासजी ने शत्रुन सूं विजय प्राप्त करवे की विधि तथा राजनीति बताई। सो इतिहासादि ग्रंथन में सुप्रसिद्ध है। और पांडवन के हार्दिक संतोष के लिये व्यासजी ने यह कही कि—मेरो तो यहाँ वनमें तुम्हारे पास रहनो असंभव है। परन्तु मेरे साथ परमाराधनीय साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीद्वारकाधीश कौ स्वरूप विराजे है, जिनकी सेवा राजा अम्बरीप प्रभृति राजर्षिन ने तथा वशिष्ठादि ब्रह्मर्षिन ने करी है। तुम्हारे

मातुलेय श्रीकृष्ण जो तुम्हारे पूर्ण सहायक हैं। इनमें उनमें कछु तारतम्य नहीं है। मोकों भगवदाज्ञा भी भई है। तासूँ यह स्वरूप मैं तुम्हारे माथे पधराय दऊँ हूँ। सो तुम आछी रीति सूँ पूर्ण भक्ति और दृढ विश्वास सूँ इनकी सेवा करो। इनकी कृपा सूँ तुम्हारो वनवास तथा गुप्त निवास भी निर्विघ्न समाप्त होयगो, और तुम विजय भी प्राप्त करोगे।

व्यासजी ने यह कहिकें श्रीद्वारकाधीश प्रभु कों राजा युधिष्ठिर के यहां पधराय दिये। राजा युधिष्ठिर ने प्रभुन के दर्शन कर अत्यंत प्रेमार्द्र होय साष्टांग प्रणाम कर, व्यासजी सूँ कही—इनकी कृपा सूँ अब सब कार्य सिद्ध होयँगे।

ता पाछें यह पांडव गुप्त भी रहे, और भारतयुद्ध भी कियो। अंत में राजा परीक्षित कूँ सेवा-विधि आछी रीति सूँ सिखाई, और यह निधिसहित राज्य सोंपके युधिष्ठिरादि पांडव तो उत्तराखंड हिमालय की आडी गये। ता पीछे राजा परीक्षित ने आछी तरह सेवा करी। सो प्रभुन की सेवा के प्रभाव सूँ कलि कूँ जीत्यो, और मर्यादा बाँधी। सो कलियुग में ऐसो महाप्रतापी और धर्माग्रही परमभक्त राजा और कोई नहीं भयो। फेर भविष्य अनुसार राजा कों कलि ने छल्यो। इत्यादि कथा श्रीमद्भागवत में प्रसिद्ध है। फेर जन्मेजय कूँ अपनो राज्य सोंपके राजा परीक्षित तो श्रीगंगातट पे अपनो अन्तिम आश्रम सुधारवे गये, और श्रीशुकदेवजी द्वारा श्रीमद्भागवत-श्रवण सूँ राजा को मोक्ष भयो। और जन्मेजय ने आसुरी यज्ञ करनो विचारयो। सो प्रभु तो अंतर्यामी जान गये।

परीक्षित के समय में प्रभु की परिचारकी की सेवा में उनके निकट सौरशर्मा ब्राह्मण रहतो हतो। वा सौरशर्मा कूँ श्रीद्वारकाधीश ने स्वप्न में जताई कि—जो राजा वैष्णव हतो सो तो गयो वाकों भविष्य ऐसो ही हतो। और यह राजा आसुरी यज्ञ करेगो, सो हम सूँ अन्याश्रय सहन नहिं होयगो। तासूँ तू हमकूँ राजा के छाने पधरायकें ले चल। यह स्वप्न आवते ही ब्राह्मण चौंकके उठ्यो, मन में विचार करवे लग्यो। प्रभुन की कहा इच्छा है? यह मोकूँ कहा स्वप्न आयो? कदाचित् मेरे मन को ही कछु भ्रम है। यह कहके पाछो सोय गयो। तब प्रभु स्वयं वाके पास पधारे, और श्रीहस्त में छड़ी हती, वाकूँ लगाय के जगायो। सो आधी निद्रावस्था में घबरायकें आँख खोलके देखे तो श्रीप्रभु सम्मुख ठाढ़े हैं। दर्शन करते ही साष्टांग प्रणाम कर हाथ जोड़के ठाढो होय गयो। कही—कहा आज्ञा है?

तब प्रभु ने आज्ञा करी। हमारी आज्ञा है सो तू कर। तब सौरशर्मा ने कही-कृपानाथ! राज तो सर्वत्र या राजा को है। मै आपकों कैसे छिपाऊंगो? तब आपने आज्ञा-करी याकी चिंता तू मत कर। तीन दिन में अर्बुदाचल पर्वत जो हमारो प्राचीन स्थान हैं वहाँ पहुँचनो है। तब वाने प्रभुन की आज्ञानुसार ही श्रीद्वारकाधीश कूं गोद में लेके अर्बुदाचल (आबू) के पर्वत कौ रास्ता लियो। सो प्रभुन ने ऐसी शक्ति ब्राह्मण में धरी कि-तीन दिन तीन रात्रि में आबू पर्वत पर जाय पहुँच्यो। रात को आयकें पर्वत के नीचे तराई में सोय गयो। फेर सवेरे याकी आँख खुली। सो एक महाजीर्ण स्थान कहीं-कहीं भींत के चि , कहीं-कहीं माटी पत्थर के ढेर, कहीं दरवाजा के चिह्नमात्र, ऐसी जगह में एक टूट्यो-फूट्यो शिखरवारो कोठा वामें प्रभु विराजे हैं। सो वह विस्मय सूं देखवे लग्यो। तब प्रभु याकी आड़ी देखके हँसे। तब या ब्राह्मण कूं ज्ञान भयो कि-यह साक्षात् सर्वशक्तिमान् है, जो-जो चमत्कार न होय वाही थोड़ो हैं।

फेर यह ब्राह्मण संसार छोड़के विरक्त होय गयो, और श्रीद्वारकाधीश की सेवा पूर्ण दृढ़ता सूँ करवे लग्यो। अर्बुदाचल के बडे-बड़े ऋषि महात्मा सिद्ध सब दर्शन कूँ आवें, और या सौर ब्राह्मण कों धन्य-धन्य कहैं। और उन सबन ने अपने-अपने शिष्यन कूँ सूचित किये कि-देखो यह निधि सत्य युगके समय की महाप्रतापशाली मूर्ति है। सो अम्बरीप के आगे कौ यह मंदिर जो अब कहूँ-कहूँ चिन्हमात्र है, तामें अपने अनेक कार्य सिद्ध कर अपने प्राचीन स्थान पे पाछे पधारे हैं। तासूँ तुम सब या सौर ब्राह्मण की परिचर्या में रह्यो करो। प्रभु विराजे वहाँ तक ये ब्राह्मण कष्ट न पावे। ऐसे भलामन करी। या प्रकार कितने ही कालपर्यंत श्रीप्रभु वहाँ विराजे।

॥ सप्तमोल्लासः समाप्तः ॥



अष्टम उल्लास।



एक समय चम्पारण्य में श्रीमदाचार्यवर्य श्रीमद्वल्लभाचार्यजी महाप्रभुन कौ प्रादुर्भाव भयो, और यहाँ आबू पे जो ब्राह्मण सेवा करतो वो अति वृद्ध होय देहांत बाद मोक्ष कों भयो। फेर वहाँ श्रीप्रभुन को पूजन-सेवा ऋषि करते हते।

आर्यावर्त के मध्यभाग में एक कन्नोज नाम गाम हतो। वहाँ विष्णुस्वामि-सम्प्रदाय कौ शिष्य एक दर्जी रहनो हतो। जाको नाम नारायण हतो। वा नारायण दर्जी कूँ रात में स्वप्न भयो, तामें श्रीद्वारकाधीश ने आज्ञा करी कि—हमारो नाम द्वारकाधीश है और हम आबू पर्वत पे ऋपीन के आश्रम में विराजे हैं, तू भक्त है। तेरी श्रद्धा सूँ हम प्रसन्न होयकें तोकूँ आज्ञा करे हैं कि–अभी जो चपारण्य में आचार्य जनमे हैं, उनके यहाँ हमकूँ पधरानो है सो तेरे द्वारा हम पधारेंगो सो तू यहाँ आबू आयकें ऋपीन सूं हमकूँ माँगके अपने घर ले आव।

यह सपना आते ही दर्जी की नींद खुली और वो मन में बहुत आश्चर्य करवे लग्यो कि—आज मोकूँ यह कहा सपना आयो ?। आबू पर्वत कहाँ है, मैं वहाँ कैसे जाऊँ ? चपारण्य में कौन आचार्य प्रगटे हैं, ये कहा बात है ? इतने में प्रातःकाल भयो सो वा दिन वा दर्जी कूँ याही विचार में व्यतीत भयो परन्तु ये दर्जी भावभक्तिवारो हतो, सो अपने नित्यनियम करते समय भजन-पाठ करके ईश्वर सूँ विनती करी—हे प्रभो! आपने अपनो दास जानके कृपा कर स्वप्न दियो। मन में बडे ही संशय में होय रह्यो है। सो मेरी बुद्धि कछू काम नहीं देय है। आपकी महिमा आपही जानो।

फेर वा दिन रात कूँ भी स्वप्न भयो कि—तू कहा विचार में पड़ गयो, तू कछू सोच मत कर, तू जल्दी आव। इतने ही में दर्जी की आँख खुली सो जल्दी-जल्दी उठकें देहकृत्य सूँ पहुँचके आबू पर्वत को रस्ता लियो। सो रस्ता पूछतो-पूछतो जल्दी-जल्दी चलतो भयो। सायंकाल होय गयो, अँधेरी रात, रस्ता सूझे नहीं। सो रस्ता में ठोकर सों ऐसी चोट लगी कि–ये दर्जी पाँव पकडके बैठ गयो। दर्द के मारे बहुत दुःखी भयो। फेर थकावट के मारे नींद आय गई। इतने में श्रीद्वारकाधीश

ने पधारकें चरण सूँ ठोकर देकें जगायो, तो देखे तो कोई न दीख्यो, तब तो यह कहवे लग्यो—हे नाथ ! मेरी यह कहा दशा ? मैं तो आपकी आज्ञा के आधार पे चल्यो आतो हतो, परन्तु अब मैं निःसाधन हूँ, सो हे नाथ ! जैसे श्रीरुक्मिणीजी के ब्राह्मण कूँ एक रात में द्वारका पहूँचायो वैसे मेरी निःसाधन की टेर सुनियो। ऐसें मन में विनती करते दर्जी कों फेर निद्रा आ गई, सो फेर प्रभु स्वयम् पधारकें लात मारकें जगायो और आज्ञा करी कि—तू सोच मत करे, चल !

तब पहिले स्वप्न में दर्शन भये, वैसे ही साक्षात् दर्शन करे सो वाके आनंद प्रेम कौ पार रह्यो नहीं। गद्गद होय साष्टाङ्ग प्रणाम करके दीन होयके विनती करी— हे करुणानिधि ! अब जा मेरे लिये आपने इतनो श्रम यहाँ तक पधारवे कौ कियो तो अब आप कृपा कर यहाँ सूँ ही मेरे घर पधारिये। पाछे इतनी दूर काहे कौ पधारो हो, तब आपने आज्ञा करी—तोकूँ अब कछु अड़चन नहीं पड़ेगी, क्योंकि हम परबारे यहाँ सूँ चलें तो जो भक्त हमारी सेवा करे हैं उनको मन दूखेगो, तासूँ वहाँ आयके उन ऋषीन सूँ हमकूँ माँग ले। इतनी आज्ञा करि आप तो अन्तर्धान भए और दर्जी कौ तो फेर निद्रा आयवे लगी। सो फेर याके तो मन में भगवद्वाणी कौ स्मरण होयकें एक संग आलस्य उड़ गयो। और श्रीप्रभु कृपा सूँ ऐसी दैवी शक्ति आय गई कि ये तो चलतोई भयो। सो पाँच दिन और पाँच रात्रि में आबू पर्वत पे पहुँच गयो।

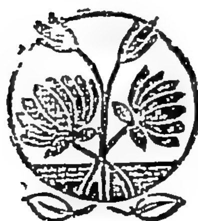
वहाँ एक कुंड के तट पे एक झोंपड़ी हती, वामें ये सोय रह्यो। सबेरे भए याकी आँख खुली, सो अजान्यो स्थान एक जीर्ण फूटे-टूटे मन्दिर के आँगन में अपने संग की गाँठ पोटली सहित बैठ्यौ और आश्चर्य करे कि—मैं तो एकपर्वत की तराई में कुंड के पास झोंपड़ी में सोयो, यहाँ मोकूँ कौन लायो ? यह सोच ही रह्यो हतो इतने तो ऋषीश्वर ऋषिकुमार आदि वहाँ भगवन्नाम लेते आवे जावे लगे। वाने यह देख्यो और उनमें सूँ एक सूँ पूछी—क्यों भाई ! यह कौनसो स्थान है ? तब एक ऋषिकुमार ने कही कि—१ यह अर्बुदाचल है और श्रीद्वारकाधीश के दर्शन होय हैं। यह प्राचीन मंदिर है, सत्ययुग में राजा अम्बरीप की यहाँ राजधानी हती।

तब दर्जी ने कही—मोकूँ दर्शन होयँगे ? वा ऋषिकुमार ने कही—हाँ, होयँगे। तब तो ये उठके श्रीके दर्शन कूँ गयो। सो दर्शन करते ही प्रेमविह्वल होय गयो। साष्टांग प्रणाम कर बाहर आय देहकृत्य स्नानादि सब पहूँचके फेर आयो और बारंबार दर्शन

कर ‘ आपकूँ पधारके लात मारके जगानो ’ इत्यादि याद करे और प्रेमाश्रु आवें उनकूँ पोंछतो जाय, कभी हँसे कभी मन ही मन में बात करे। यह चेष्टा ऋषि देख याकी भक्ति की सराहना करवे लगे। तब या दर्जी ने ऋषिन सूँ हाथ जोड़ि के प्रार्थना करी कि—महाराज ! मोकूँ स्वप्न में प्रभुन की ऐसी आज्ञा भई, या प्रकार मैं यहाँ आयो इत्यादि सब कह सुनायो। फेर कहवे लग्यो सो ये निधि आप कृपा करके मोकूँ पधराइये। तब ऋषि जो सबसूं वृद्ध हते वह बोले—हाँ, कन्नौज के दर्जी तुमही हो ? तब वाने कही—हाँ। तब ऋषि ने कही कि—हमकूँ भी आज्ञा भई है, सो भले ही पधराओ। सो फेर दर्जी ने श्रीद्वारकाधीश कूँ ऋषीन सूं लेके अपने माथे पधराए। सो जैसे पाँच दिन में घरसूं आयो वैसे ही प्रभुन कूं सँग लेके तीन ही दिन में पाछो कन्नौज अपने घर पहुँच्यो।

ये नारायण दर्जी, याकी बहू लक्ष्मी, याकी बहन सरस्वती ये तीनों बडे उत्साह सूँ प्रेम सूँ प्रभुन की सेवा करवे लगे। याके घर में एक तुलसीक्यारा के पास एक भींत में बड़ो हटड़ा हतो। वाही में श्रीप्रभुन कूँ पधराय वा हटड़ा कूँ ही यह मन्दिर करके मानवे लग्यो। सो कितने ही वर्षपर्यंत दर्जी के घर में विराजे। दर्जी भक्तिवश होयके नित्य एक मुट्ठी चना की दार भिजोय के भोग धरतो, श्रीप्रभु वाही कूँ राजा अम्बरीष के राजवैभव सूँ विशेष मानते। ऐसी कृपा या दर्जी के ऊपर प्रभु करते।

॥ अष्टमोल्लासः समाप्तः ॥



नवम उल्लास।

एक समय संभरवाल क्षत्री दामोदरदास करोली के चन्द्रवंशी राजा के प्रधान हते। वे राजा के शासन की सँभाल करते हते। उनकों हस्तिनापुर गाम में मुकाम हतो। वहाँ उनकूँ एक ताम्रपत्र मिल्यो। वा ताम्रपत्र में जो-जो आकृते, चिह्न लिखे वह कोई की समझ में न आवे। वा ताँवा-पत्र कूँ दामोदरदासजी संग में ले अपने घर आए। वहाँ आछे–आछे विद्वान् पंडितन कूँ बुलायकें चिन आकृतिन कूँ दिखावें, सो कोई की समझ में न आवे। फेर रात्रि कूँ श्रीद्वारकाधीश प्रभु ने दामोदरदास कूँ स्वप्न दियो कि–तू विचार मत कर, यह ताम्रपत्र हमने प्रेरणा कर दियो है, और जो कोई या आखे ताम्रपत्र कौ अर्थ करके तोकूँ समझावे-वाकूँ तू अपनों गुरु करियो।

यह आज्ञा स्वप्न में सुनकें दामोदरदास की आँख खुली। सो अब इनके मन में अत्यंत उत्कंठा यह भई कि—जिन प्रभुन ने मोकूँ स्वप्न में दर्शन दिये और यह ताम्र-पत्र दियो वे प्रभु कहाँ विराजे हैं? और मोकूँ साक्षात् कैसें प्राप्त होय?

इस प्रकार सर्वदा चिंतवन करें, और जो कोई विद्वान् और ऋषि-महात्मा इनके यहाँ आवें इनसूँ मिले। उन सबन को स्वागत सत्कार करें और ताँवा-पत्र कौ अर्थ पूछे सो कोई सूँ बतायो नहीं जाय, कोई कछू कहे, कोई कछू कहे, दामोदरदास के मन कूँ संतोष नहीं होय, तासूँ अनेक साधु–संन्यासी यति–विद्वान् आए, सब फिरके चले गए।

दामोदरदासजी जब कन्नौज में रहते हते सो एक दिन इनकों भी खबर लगी कि–चंपारण्य में कोई महात्मा प्रगटे हते सो वे अब देश-देशान्तर में शास्त्रार्थ कर दिग्विजय करते चले आवें हैं, वे बड़े प्रतापी हैं। ऐसे इनकों खबर लगी, सो दामोदरदासजी कों दिनोंदिन उनके दर्शन की इच्छा बढ़वे लगी कि—कैसे भी उन चंपारण्यवारे महात्मा के दर्शन होंय।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी तो अन्तर्यामी हते, सो याही कारण कों जानकें आप पृथ्वी-परिक्रमा करते कन्नौज पधारे, सो गाम के बाहर मुकाम कियो और गाम में कृष्णदास सेवन कों पठाती समय यह आज्ञा करी कि—कोई सूँ कछू कहियो मत। सो

कृष्णदास मेघन ने कह्यो–जो आज्ञा। फेर कृष्णदास मेघन बजार में मोदी की दुकान पे आचार्यश्री के तपेली कौ सामान लेरहे हते, वा समय सेठ दामोदरदासजी राजद्वार सूँ वा रस्ता होय घर जाते हते, सो मोदी की दुकान पे तिलक-मुद्रा धारण किये कृष्णदासजी कों उनने देखे सो वहाँ अपनो मनुष्य भेजके पुछाई कि–ये कौन वैष्णव हैं ? कृष्णदासजी के संग के आदमी ने उत्तर दियो कि–ये कृष्णदास मेघन हैं। सो वा खबरवारे मनुष्य ने सेठ दामोदरदासजी सों कही कि–ये कृष्णदास मेघन है। तब तो दामोदरदास चलते-चलते ठहरके कृष्णदास मेघन के पास आये और भगवत्स्मरण करि पूछ्यो, श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं ? तब कृष्णदास मेघन ने कही कि–आज्ञा नहीं। ऐसे तीन बखत पूछी, तीनों वेर यही उत्तर मिल्यो, तब तो दामोदरदासजी वहाँ ठहर गए, और जब सामान लेके कृष्णदास मेघन चले तब पीछे पीछे दामोदरदासजी भी श्रीआचार्यचरण के दर्शन कों चले, सो जहाँ श्रीमहाप्रभुजी विराजते वहाँ पहुँचे। आपके दर्शन महान् अलौकिक साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम-वदनावतार के होते ही साष्टाङ्ग प्रणिपात करके हाथ जोड़ ठाढ़े होय गए।

श्रीआचार्यचरण ने गंभीर वाणी सूँ दामोदरदास कों आज्ञा करी, आओ दामोदर-दास ! वह ताम्रपत्र लाओ। सो दामोदरदासजी बोले–जै कृपानाथ ! आप अंतर्यामी हो, सबके मन की जानवेवारे हो, अब वा ताम्रपत्र की कहा अटकी है। मोकूँ आपके दर्शनमात्र सूँ ही दृढ निश्चय होय गयो कि–मेरे भाग्योदय अब अवश्य होयँगे– तब आपने आज्ञा करी–यह तुम्हारी भक्ति कौ कारण है, परन्तु मुख्य भगवदाज्ञा है, वाकूँ उल्लंघन नहीं करनी। भगवदाज्ञा के पालन किये सूँ मन के संदेह दूर होंय, सर्वदा सुख होय और कल्याण होय है। तासूँ ताम्रपत्र प्रथम लाओ।

दामोदरदासजी ताम्रपत्र कों सर्वदा अपने संग राजकीय कार्य को छोटी पेटी में राखते हते, सो नोकर सों पेटी मँगाय ताम्रपत्र निकालके- उनने श्रीमदाचार्यजी के आगे धर दियो। आपश्री ने वा ताम्रपत्र कूँ उटायके देख्यो, और दामोदरदासजी सूँ पूछी–याको आशय तुमसों कोई ने कछू भी नहीं कह्यो ? तब दामोदरदासने विनती करी कि–मैंने बहुत से साधु, संन्यासी, यति, ब्रह्मचारी, पंडित, महात्मा, संत, महंत अनेक वेशधारीन कूँ यह बतायो, परन्तु कोई कछू कहे है, कोई कछू। मेरे मन कौ यथार्थ संतोष नहीं भयो, क्योंकि जितनो उनने कह्यो उतनो तो मैं भी मेरी अल्पता सूँ जान सकूँ हूँ, तासूँ अब तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम, आप ही कृपा करके कहेंगे, यह दास की नम्र विनय है।

तब आपने आज्ञा करी–देखो, इन आकृतिन कूँ देखते जाओ और ध्यानपूर्वक सुनो। या ताम्रपत्र में कितनेक प्रकार की आकृति खुदी भई हती और पूर्ण भक्ति को निरूपण हतो, सबके पीछे यह लिख्यो हतो कि–या ताम्रपत्र की सम्पूर्ण आकृतिन को ऐक्य करके जो यथार्थ अर्थ समझावे उनके शरण तू जैयो, फेर आप आज्ञा किये–

'यामें यह गिद्ध और स्त्री की जैसी आकृति है सो पूतना की है, यह अविद्या (अज्ञान) कौ रूप है। याके पास 'गर्दभ' की आकृति है सो 'धेनुक' राक्षस की है, यह 'देहाध्यास' को रूप है। याके पास 'घोड़ा' की आकृति है सो 'केशी' दैत्य की है, यह 'इन्द्रियाध्यास' कौ रूप है। याके पास यह 'राक्षस' की आकृति है सो 'प्रलंबासुर' की है, यह 'अंतःकरणाध्यास' कौ रूप है। याके पास यह 'अग्नि के मंडल' की आकृति है, सो 'दावानल' की है, यह 'प्राणाध्यास' कौ रूप है। और यह सम्मुख वेणुनाद करती मूर्ति है सो साक्षात् श्रीकृष्ण की है। यह अविद्या (पूतना) देहाध्यास (धेनुक) इन्द्रियाध्यास (केशी) अंतःकरणाध्यास (प्रलम्ब) इन सबन कौ वध करे हैं और प्राणाध्यास (दावानल) कौ पान करे हैं। और यह जो–समीप 'सर्प' की आकृति है, सो 'काम, क्रोध' कौ रूप है, याके ऊपर श्रीकृष्ण नृत्य करे हैं; क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम के आगे काम, क्रोध कौ प्राबल्य नहीं चले हैं, और यह 'गोलाकार' आकृति है सो 'ब्रह्म' कौ रूप है। यह साकार ब्रह्मवाद–सूचक चिन्ह है, और यह श्रीकृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़के ठाढ़ी स्त्री की आकृति है सो 'भक्ति' को रूप है। याके आड़ी श्रीप्रभु प्रसन्नता सूँ दृष्टिपात करे हैं। या भक्ति के पास जो यह दोय बालकन की आकृति है, सो यह १ ज्ञान २ वैराग्य हैं। यह दोनों यह सूचना करे हैं कि–भक्ति होय वे सूँ ही ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होय हैं। और पास ये हाथ के 'पंजा' की आकृति है तामें यह दीर्घ रेखा है सो पूर्ण आयुष्य की है, और यह छोटी रेखा साधुता की है। याके पास यह दूसरी सम्मिलित रेखा है, सो ऐश्वर्य की है। पास ही भक्ति कौ स्वरूप और भक्तिनिरूपण तत्त्व है यासूँ यह सिद्ध ही है कि– मनुष्य भक्तिनिष्ठ होय वह दीर्घायुष्यवान्, साधुस्वभाव, ऐश्वर्यवान् होय है।

या प्रकार सब आकृतिन को एकवाक्यता करके अर्थ आज्ञा कियो, सो तथा भक्तिनिरूपण–श्रवण करके सेठ दामोदरदासजी प्रेम–गद्गद होय वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम कर मुग्ध होय गए।

कृष्णदास मेघन ने कही—जो आज्ञा। फेर कृष्णदास मेघन बजार में मोदी की दुकान पे आचार्यश्री के तपेली कौ सामान लेरहे हते, वा समय सेठ दामोदरदासजी राजद्वार सूँ वा रस्ता होय घर जाते हते, सो मोदी की दुकान पे तिलक-मुद्रा धारण किये कृष्णदासजी कों उननें देखे सो वहाँ अपनो मनुष्य भेजके पुछाई कि—ये कौन वैष्णव हैं ? कृष्णदासजी के संग के आदमी ने उत्तर दियो कि—ये कृष्णदास मेघन हैं। सो वा खबरवारे मनुष्य ने सेठ दामोदरदासजी सों कही कि—ये कृष्णदास मेघन है। तब तो दामोदरदास चलते-चलते ठहरके कृष्णदास मेघन के पास आये और भगवत्स्मरण करि पूछ्यो, श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं ? तब कृष्णदास मेघन ने कही कि—आज्ञा नहीं। ऐसे तीन बखत पूछी, तीनों बेर यही उत्तर मिल्यो, तब तो दामोदरदासजी वहाँ ठहर गए, और जब सामान लेके कृष्णदास मेघन चले तब पीछे पीछे दामोदरदासजी भी श्रीआचार्यचरण के दर्शन कों चले, सो जहाँ श्रीमहाप्रभुजी विराजते वहाँ पहुँचे। आपके दर्शन महान् अलौकिक साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम-वदनावतार के होते ही साष्टाङ्ग प्रणिपात करके हाथ जोड़ ठाढ़े होय गए।

श्रीआचार्यचरण ने गंभीर वाणी सूँ दामोदरदास कों आज्ञा करी, आओ दामोदरदास ! वह ताम्रपत्र लाओ। सो दामोदरदासजी बोले—जै कृपानाथ ! आप अंतर्यामी हो, सबके मन की जानवेवारे हो, अब वा ताम्रपत्र की कहा अटकी है। मोकूँ आपके दर्शनमात्र सूँ ही दृढ निश्चय होय गयो कि—मेरे भाग्योदय अब अवश्य होयँगे—तब आपने आज्ञा करी—यह तुम्हारी भक्ति कौ कारण है, परन्तु मुख्य भगवदाज्ञा है, वाकूँ उल्लंघन नहीं करनी। भगवदाज्ञा के पालन किये सूँ मन के संदेह दूर होंय, सर्वदा सुख होय और कल्याण होय है। तासूँ ताम्रपत्र प्रथम लाओ।

दामोदरदासजी ताम्रपत्र कों सर्वदा अपने संग राजकीय कार्य को छोटी पेटी में राखते हते, सो नोकर सों पेटी मँगाय ताम्रपत्र निकालके- उननें श्रीमदाचार्यजी के आगे धर दियो। आपश्री ने वा ताम्रपत्र कूँ उठायके देख्यो, और दामोदरदासजी सूँ पूछी—याकौ आशय तुमसों कोई ने कछू भी नहीं कह्यो ? तब दामोदरदासने विनती करी कि—मैंने बहुत से साधु, संन्यासी, यति, ब्रह्मचारी, पंडित, महात्मा, संत, महंत अनेक वेशधारीन कूँ यह बतायो, परन्तु कोई कछू कहे है, कोई कछू। मेरे मन कौ यथार्थ संतोष नहीं भयो, क्योंकि जितनो उनने कह्यो उतनो तो मैं भी मेरी अल्पज्ञता सूँ जान सकूँ हूँ, तासूँ अब तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम, आप ही कृपा करके कहेंगे, यह दास की नम्र विनय है।

तब आपने आज्ञा करी–देखो, इन आकृतिन कूँ देखते जाओ और ध्यानपूर्वक सुनो। वा ताम्रपत्र में कितनेक प्रकार की आकृति खुदी भई हती और पूर्ण भक्ति को निरूपण हतो, सबके पीछे यह लिख्यो हतो कि–या ताम्रपत्र की सम्पूर्ण आकृतिन को ऐक्य करके जो यथार्थ अर्थ समझावे उनके शरण तू जैयो, फेर आप आज्ञा किये–

'यामें यह गिद्ध और स्त्री की जैसी आकृति है सो पूतना की है, यह अविद्या (अज्ञान) कौ रूप है। याके पास 'गर्दभ' की आकृति है सो 'धेनुक' राक्षस की है, यह 'देहाध्यास' को रूप है। याके पास 'घोड़ा' की आकृति है सो 'केशी' दैत्य की है, यह 'इन्द्रियाध्यास' कौ रूप है। याके पास यह 'राक्षस' की आकृति है सो 'प्रलंबासुर' की है, यह 'अंतःकरणाध्यास' कौ रूप है। याके पास यह 'अग्नि के मंडल' की आकृति है, सो 'दावानल' की है, यह 'प्राणाध्यास' कौ रूप है। और यह सम्मुख वेणुनाद करती मूर्ति है सो साक्षात् श्रीकृष्ण की है। यह अविद्या (पूतना) देहाध्यास (धेनुक) इन्द्रियाध्यास (केशी) अंतःकरणाध्यास (प्रलम्ब) इन सबन कौ वध करे हैं और प्राणाध्यास (दावानल) कौ पान करे हैं। और यह जो–समीप 'सर्प' की आकृति है, सो 'काम, क्रोध' कौ रूप है, याके ऊपर श्रीकृष्ण नृत्य करे हैं; क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम के आगे काम, क्रोध कौ प्राबल्य नहीं चले हैं, और यह 'गोलाकार' आकृति है सो 'ब्रह्म' कौ रूप है। यह साकार ब्रह्मवाद–सूचक चिन्ह है, और यह श्रीकृष्ण के सम्मुख हाथ जोड़के ठाढ़ी स्त्री की आकृति है सो 'भक्ति' को रूप है। याके आड़ी श्रीप्रभु प्रसन्नता सूँ दृष्टिपात करे हैं। या भक्ति के पास जो यह दोय बालकन की आकृति है, सो यह १ ज्ञान २ वैराग्य हैं। यह दोनों यह सूचना करे हैं कि–भक्ति होय वे सूँ ही ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होय हैं। और पास ये हाथ के 'पंजा' की आकृति है तामें यह दीर्घ रेखा है सो पूर्ण आयुष्य की है, और यह छोटी रेखा साधुता की है। याके पास यह दूसरी सम्मिलित रेखा है, सो ऐश्वर्य की है। पास ही भक्ति कौ स्वरूप और भक्तिनिरूपण तत्त्व है यासूँ यह सिद्ध ही है कि– मनुष्य भक्तिनिष्ठ होय वह दीर्घायुष्यवान्, साधुस्वभाव, ऐश्वर्यवान् होय है।

•

या प्रकार सब आकृतिन को एकवाक्यता करके अर्थ आज्ञा कियो, सो तथा भक्तिनिरूपण–श्रवण करके सेठ दामोदरदासजी प्रेम–गद्गद होय वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम कर मुग्ध होय गए।

दामोदरदास ! यह स्वरूप अति प्राचीन है, इनको सर्वत्र बहुत–से ग्रंथन में वर्नन है। श्रीमद्भागवत, गीता, उपनिषद्, महाभारत, वाल्मीकीय रामायण पद्मपुराणादि अनेक ग्रंथन में आपके स्वरूप कौ वृत्तांत है। परमगुप्त रसमयलीला कौ स्वरूप श्रीद्वारकाधीश कौ है, तासूँ कोई इनकूँ जाने नहीं है। तुम्हारी इनके चरण में पूर्ण भक्ति जानकें और इन प्रभुन की हमकूँ आज्ञा भी है, तासूँ तुमकूँ इनके स्वरूप कौ अनुभव करवानो उचित है, क्योंकि तुमने इनकी पूर्व जन्म में तो मर्यादा–भक्ति सूँ सेवा करी और या जन्म में तुमकूँ पुष्टिभक्ति सों सेवा करनी है। तुम्हारे द्वारा अनेक पुष्टि–दैवी जीवन कों इनके स्वरूप कौ अनुभव होयगो, तासूँ हम कहे हैं सो दृढ चित्त सों सुनो।

॥ नवमोल्लासः समाप्तः ॥



दशम उल्लास ।

—— :o: ——

श्रीमदाचार्यजी नें आज्ञा करीः—"यह स्वरूप श्रीमद्भागवत—दशमस्कंध के प्रमेय-प्रकरण के सप्तमाध्याय की लीला कौ प्रागट्य है, और प्रकरण की लीला आपमें गुप्त हैं, ताही सों व्रजलीला में आप प्रमेयबल-लीला करि चतुर्भुज दर्शन देत हैं, सो श्रीमथुराधीश और श्रीद्वारकाधीश यह दोनों स्वरूप की मिलकें मिश्रित लीला है।

मुख्य में श्रीद्वारकाधीश कौ स्वरूप वन-निकुंज में आँख—मिचौनी की भावना कौ हैं। इनके नीचे के दक्षिण श्रीहस्त में पद्म है ताकौ अवांतर भाव यह है जो—जापर यह पद्म कौ श्रीहस्त धरें तापर चौदह भुवन कौ भार पड़े, तासूं पद्म आयुधरूप है। यथा—'भुवनात्मकं कमलम्' इति।

याकौ मुख्य भाव पुष्टि—रीति सूँ तो श्रीस्वामिनी के श्रीहस्त की हथेरी है। श्रीप्रभुन ने श्रीप्रियाजी के नेत्र—निमीलन किये हैं, सो स्वामिनीजी अपनी हथेरी सूँ नेत्र-निमीलन छुड़ावत हैं।

ऊपर के दक्षिण श्रीहस्त में गदा है। ताकौ अवांतर भाव यहः—आप अस्त्र कौ तेजनिवारण करत हैं। तासूँ गदा आयुधरूप है। यथा—'अस्त्रतेजस्वगदया' इति। याकौ मुख्य भाव पुष्टिरीति सौं तो—अद्भुत लीला देखकें श्रीस्वामिनीजी भुजा-श्लेष करत हैं, सो भुजा कौ आश्लेषरूप गदा है।

ऊपर के वाम श्रीहस्त में चक्र है, ताकौ अवान्तर भाव यह—जाकूँ मुक्ति देनी होय ताकूँ चक्र सूँ मारें, तासूँ चक्र आयुधरूप है। यथा—'ये ये हताश्चक्रधरेण राजन्!' इति।

इन्ही स्वरूप द्वारा यह आज्ञा भई सो यह दोऊ वाम तथा दक्षिण दोनों भाग के स्वरूप भी आप द्वारकाधीश के ही वस्तुतः हैं। लीलाकारण पीठिका में प्रथम दर्शन देत हैं।

अब दोऊ आड़ी के निचले श्रीहस्त के नीचे दोय-दोय स्वरूप मिलिकें चार हैं, सो इनकौ स्वरूप कहत हैं, सो सुनो। दामोदरदास ! पृथक् प्रमाण सूँ तो यह चारों पार्षद हैं, इनके नाम – सुनन्दन, नन्द, प्रबल, अर्हण हैं।

दूसरे प्रमाण सूँ यह चारों वेद–ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद हैं।

तीसरे प्रमाण सूँ यह चारों व्यूह हैं–प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण, वासुदेव। और पुष्टि के प्रमाण सूँ यह चारों यूथाधिपति–मुख्या चारों स्वामिनी हैं—नित्यसिद्धा श्रीराधिकाजी, श्रुतिरूपा श्रीचन्द्रावलीजी, ऋषिरूपा श्रीकुमारिका राधा सहचरीजी, तुर्यप्रिया श्रीयमुनाजी।

श्रीमस्तक पे किरीट है सो–प्रथम मर्यादा को अंगीकार है, मुख्य पुष्टि–भाव सूँ तौ मयूर पक्ष के मुकुट कौ ही पर्याय रूप किरीट है। और मल्लकाछ कटि में धारण है, सो सृष्टि रचनो श्रमसाध्य है तासूँ। पुष्टिभाव तो काम के जीतवे के हेतु सूँ नटवत् विहाररूप मल्लकाछ है। यज्ञोपवीत धारण है सो–श्रुतिन कौ अंगीकार है, और श्रीकंठ में हाँस धारण है सो श्रीस्वामिनीजी सम्मुख तें आश्लेष करत हैं, सो आपके उभय मुख की कांति प्रभारूप है। वनमाला है सो यावत् व्रज की वनस्पतीन द्वारा व्रजभक्तन कों अंगीकार करत हैं। चरण में नूपुर, पायल, श्रीहस्त में कड़ा है सो आपकौ युगलस्वरूप भावाविशिष्ट स्वरूप है, तासूँ युगलता सूचित है। क्रीट के पिछाड़ी तेज कौ चिन्ह है सो कोटि कन्दर्प–लावण्य असंख्य सूर्य आपके तेज के आगे लज्जित होयँ। या प्रकार आपके श्रीअंग के चिह्न हैं। ऐसो आपकौ अगम्य स्वरूप है।

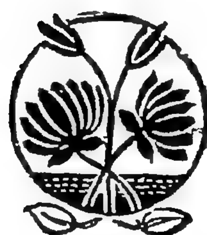
दामोदरदास ! तुम्हारे परमभाग्य हैं, जो—यह स्वरूप इनकी स्वय इच्छा सूँ तुम्हारे ऊपर पूर्ण अनुग्रह करकें विराजे हैं। तु[illegible] भाग्य की सीमा नहीं"।

या प्रकार श्रीमदाचार्यजी ने आज्ञा करी। प्रणाम करि दोऊ कर जोड़के प्रार्थना करी कि–प्रभो ! मैं :साधन

होऊँ, यही माँगू हूँ, सर्वदा निरंतर आपकी कृपा सों मेरो चित्त आपके ही चरणकमल में रहे। आपकों एक क्षण हूँ विप्रयोग न होय।

तब श्रीमहाप्रभुन ने दामोदरदास की अत्यन्त दृढ भक्ति देखिकें मन में विचार्यो जो–यह मेरे दर्शन विना देह न राखेगो। यह अंतःकरण की जानिकें दामोदरदासजी के ऊपर अत्यन्त अनुग्रह करिकें आपने अपुनें चरणपादुका पधराय दिये और आज्ञा किये—जो इन पादुका द्वारा तुम्हारो मनवांछित तुमकों प्राप्त होयगो। यह आज्ञा करि आप परिक्रमार्थ पधारे। फेर श्रीद्वारकाधीश दामोदरदासजी के माथे विराजे।

॥ दशमोल्लासः समाप्तः ॥



एकादश उल्लास।

—— :o. ——

ऐसे महानुभाव दामोदरदासजी श्रीमदाचार्यजी की कृपा सों महान् अलौकिक निधि कूँ प्राप्त करकें उनकी निरन्तर पूर्ण भक्ति-भाव सूँ सेवा करते। सेठजी स्वयं सम्पत्तिवारे हते। तैसे इनको जहाँ विवाह भयो, वह सासरे कौ घर हू संपत्तिवारो हतो। जा दिन इनकी स्त्री इनके घर आई वा दिन दाहिजा में सौ दासियाँ परिचर्या करवे संग आई।

श्रीद्वारकाधीश की कृपा सूँ इनकी संपत्ति में उत्तेजन ही होतो गयो। इतने पे भी दामोदरदास तो या धन-संपत्ति तथा राजगौरव कूँ अतितुच्छ मान निरंतर भगवत्सेवा में तत्पर रहवे लगे और केवल अनन्यता को अंगीकार कियो। वे श्रीप्रभुन की सोहनी, मंदिर-वस्त्र आदि सेवा अपुने ही हाथ सों करते, यावत् संभव बनते प्रयास अपुन सूँ होय इतने दूसरे सूँ नहीं करावते। इनकी ऐसी अनन्य भक्ति सों ही श्रीद्वारकाधीश अनेक अनुभव इनकों करावते और सानुभाव जतावते। सो सेठ दामोदरदास तथा इनकी स्त्री दोनो अति श्रद्धा सों नित्य सेवा करते।

एक समय सेठजी श्रीप्रभुन की जलपान की गागर भरवे जाते हते। बजार में सेठजी के श्वशुर की दुकान हती। वे नित्य तो इनकूँ गागर भरवे जाते देखते नहीं, लोग कहते सो केवल सुनते। एक दिन कंधा पे गागर लिए देखे सो देखतेई इनके श्वशुर दुकान पे सूँ नीचे उतर आए, और सेठजी के पास आयके कही कि-तुम मेरे जमाई हो, और राजा के राजमंत्री हो सो यह कार्य तुम करो हो तामें हमारी वड़ी नीची दीखे है, और हमारी लाज जाय है। तासूँ घर में इतने मनुष्य हैं सो कहा काम के हैं ? उनपे ही जल भरवायो करो"। तुम्हारी गाम में चर्चा होय है सो अब तुम यह मत करो"। सेठजी यह सुनकें चले और ससुर सों कही कि-ठीक, अब ऐसे न करेंगे। ऐसें कहिके घर जाय सेवा में तत्पर भए।

दूसरे दिन मन में विचार करकें कि-यह लौकिक प्रतिष्ठा और कुलकानि कौ अभिमान सेवा और भक्ति के आगे अति तुच्छ है, तासूँ लौकिकाभिमान हू छुड़ायवे

के निमित्त केवल भक्तिवश होयकें एक घड़ा नित्यवत् आपनें लियो और दूसरो घड़ा अपनी स्त्री कूँ दियो । स्त्री कूँ संग लेकर दोऊ जने जलपान की सेवा करवे चले । स्त्री ने हूँ भगवत्सेवा तथा पति की आज्ञा मान लौकिक की कछु शंका न राखी और जल भरवे चली । जल भर के पाछी आवती वेर सेठजी के ससुर ने देख्यो सो दुकान पे सूँ उठकें इन दोउन के पीछे-पीछे होय गये ।

सेठजी घर गये सेवा सूँ पहूँचके विश्राम लेवे बैठे, सोई सेठजी के ससुर उनके पाँवन में गिर पड़े और कही कि-तुमने बड़ोई अनर्थ कियो, मने सौ दासियाँ बेटी के संग दहेज में दीनी हैं और मेरी बेटी बजार के बीज में होयके जल भरवे जाय सो यामें तो मेरी नाक कटै है, लाज जाय है, तासूँ तुम तो तुम्हारी राजी आवे तैसे भले ही करो, परन्तु मेरी बेटी कों तो जल भरवे मत ले जायो करो ।

अपने पिता कौ यह कहनो सुनिके सेठानी के चित्त में लौकिक विचार आयो, सो वानें जलपान की सेवा छोड़ दीनी, और दामोदरदासजी तो निर्भय हते सो-उनकूँ तो अपनी सेवा छोडनी नहीं हती । उनकौ ससुर जो नित्य उनकूँ टोंकतो तासूँ उनकी सेवा में बाधा न होय ताके लिये वा दिन स्त्री कूँ संग ले गए हते । सो ता दिन पीछें सेठजी के ससुर ने सेठ दामोदरदास सों कछु न कहो । वे ऐसे निर्भयता सूँ भगवत्-सेवा करते ।

फेर एक समय श्रीमदाचार्यवर्य श्रीमहाप्रभुजी दामोदरदासजी के घर पधारे, सो दामोदरदासजी की भक्ति-भाव स्नेह-सेवा सूँ आप अत्यंत ही प्रसन्न भये । आज्ञा करी कि-दामोदरदास ! तुम्हारे मन में कछु मनोरथ होय सो माँगो, तब दामोदरदास ने दोऊ हाथ जोड़के विनती करी कि-कृपानाथ ! मेरे माथे आपश्रीने कृपा करके प्रभु पधराये, और आपहू साक्षात् पुरुषोत्तम सर्वदा मेरे हृदय में विराज रहे हैं, सो मेरे काहू बात की न्यूनता नहीं है, यही सर्वदा माँगनो है कि-आपश्री के ही चरणकमल कौ ध्यान मेरे हृदय में सर्वदा स्थिर रहे, राज के प्रताप और आशीर्वाद सों काहू बात की खामी नहीं है ।

ऐसे लौकिकासक्ति सूँ निरपेक्ष दामोदरदासजी हते, तो भी आधुनिक जीवन कूँ दिखायवे के हेतु पुनः श्रीआचार्यचरण ने आज्ञा करी कि-तुम्हारी स्त्री सूँ पूँछि देखो । तब आज्ञा होयवे सूँ दामोदरदासजी नें अपुनी स्त्री सों कह्यो-तुम्हारे कछु मनोरथ

होयँ सो माँगो, श्रीगुरुचरण की आज्ञा है। जब स्त्री ने पुत्र माँग्यो, तब आपने आशीर्वाद दियो कि पुत्र होयगो। या प्रमाण आशीर्वाद दे श्रीआचार्यचरण तो घर पधारे।

समय पायके दामोदरदास की स्त्री के गर्भ-प्राप्ति भई। प्रसव के निकट दिन में इनके घर के पास कोई स्यानो डाकोतिया मंत्रतंत्रवारो आयो, वासों सेठानी की एक दासी ने पूछ्यो कि-सेठानी के छोरा होयगो ? कि छोरी होयगी ? तब वा डाकोतिया ने कही कि-छोरा होयगो। यह अन्याश्रय भयो।

श्रीमदाचार्यजी तो अन्तर्यामी साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम हते। सो आप दामोदरदास के यहाँ पधारे, तब आज्ञा करी-तुम्हारे घर में अन्याश्रय भयो है। तब दामोदरदास कों अत्यत विस्मय भयो और घर में पूँछ-ताँछ करी। तब निश्चय भई कि-दासी ने एक डाकोतिया सूँ पूछ्यो यह बात साँची है। तब श्रीमदाचार्यजी ने आज्ञा करी कि-बेटा तो होयगो, परन्तु आसुरी होयगो।

फेर श्रीआचार्यचरण तो परिक्रमार्थ पधारे, और यहाँ दामोदरदास की स्त्री हू सावधान भई। जब उनके पुत्र भयो, तब दोनों दंपतीन ने वा अपने पुत्र सों स्नेह-लाड़ कछू न राख्यो, कुलकानि हू न राखी, और वा पुत्र कूँ धाय कों सौंप दियो। दामोदरदास ने वाको मोंड़ो हू न देख्यो।

जब समय प्राप्त भयो, तब दामोदरदासजी भगवल्लीला में प्राप्त भये। इनकी स्त्री ने सब उनको संस्कार कियो, बेटा सूँ चार दिन छानी राखी। श्रीदामोदरदासजी के सत्संगवारे दोय-वैष्णव के संग यावत् द्रव्यपात्रादि वस्तु श्रीप्रभुन के सहित भावसहित दोय नाव भरिके श्रीमदाचार्यजी के घर चलती करी। घर में कछू हू न राख्यो। ता पीछे बेटा कों खबर करी, वो घर में आयो सो एक नाव करके अगली नाव के पीछे वानें अपनी नाव चलाई। सो ये तो चार दिन पीछे गयो, सो याने रास्ता में ये सुनी कि-बे नाव तो गोकुल में पहुँच गई। सो ये पाछो आयो।

या प्रकार सेठ दामोदरदासजी की स्त्री सावधान भई। फेर थोड़े काल में सेठानी हू भगवच्चरण में प्राप्त भई। या प्रकार श्रीद्वारकाधीश श्रीमदाचार्यजी तथा श्रीगुसाईंजी श्रीविट्ठलाधीशजी के माँथे विराजे।

॥ एकादशोल्लासः समाप्तः ॥

द्वादश उल्लास



श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलाधीशजी ने बहुत समय तक सेवा कर श्रीप्रभुन के अनेक मनोरथ किये। अन्त में आपने जब अपने सातों पुत्रन कों घर को बाँटा करि दियो, तब आपके तीसरे लालजी श्रीबालकृष्णजी कूँ श्रीद्वारकाधीश पधराय दिये। श्रीबालकृष्णजी ने अत्यंत ही प्रसन्नता सूँ श्रीद्वारकाधीश अपने घर पधराए। श्रीगुसांईजी ने बाँटा करते समय सब पुत्रन सों यह आज्ञा करी कि–"सब भाई हिलमिलके ऐक्य राखिके रहियो, क्योंकि–समय काल अत्यंत कठिन है, तासूँ अत्यन्त सावधानी सूँ रहियो। हमने जैसे सब स्वरूपन की पाँती कर दीनी है, तैसे ही सब हिलमिलके सेवा करियो।"

घर के बाँटा के समय और तो सब लालजीन ने अपने-अपने ठाकुरजी ले लिये, परन्तु छठे लालजी श्रीयदुनाथजी ने अपने बँट के श्रीबालकृष्णजी ठाकुरजी आए हते, सो "ये तो छोटे बहुत हैं" कहिके न लिये। तब तीसरे लालजी श्रीबालकृष्णजी ने श्रीगुसांईजी सों विनती करी कि–"ये स्वरूप आज्ञा होय, तो मैं राखूँ, जासूँ पलना हिंडोला इत्यादि के समय में ठीक पड़े, क्योंकि श्रीद्वारकाधीश बड़े स्वरूप हैं।"

तब श्रीगुसांईजी हँसे, और आज्ञा करी कि "ठीक, तुम्हारी इच्छा है, तो कछु चिन्ता नहीं है। तुम्हारे और महाराजा* के गाढ़ स्नेह है, सो भले ही तुम इनकों राखो। जब महाराजा अथवा इनके वंश को कोई माँगें, तब उनकों श्रीबालकृष्णजी पधराय दीजो, क्योंकि ये ठाकुरजी इनके हैं।"

श्रीबालकृष्णजी ने पितृचरण की आज्ञा मानकर ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी श्रीद्वारकाधीश के पास पधराए। श्रीबालकृष्णजी और श्रीयदुनाथजी दोनो भाईन के परस्पर अत्यन्त ही स्नेह हतो। दोनो भाई हिलमिलके भेले ही सेवा करते हते।

एक समय श्रीगुसांईजी प्रसन्नता में विराजे हते, वा समय श्रीबालकृष्णजी ने हाथ जोड विनती करी कि–कृपानाथ! मेरे ऊपर आपने कृपा करिके श्रीद्वारकाधीश

* श्रीयदुनाथजी को श्री गुसांईंजी इसी नाम से बुलाते थे।

सरीखी निधि पधराय दीनी है, परन्तु इनके श्रीस्वामिनीजी पधरायवे की मेरे मन में बहुत ही इच्छा है, मेरे मन में युगल स्वरूप कौ मनोरथ है, सो आप ही कृपा करेंगे, तब मनोरथ सिद्ध होयगो ।

तब श्रीगुसाईजी ने कृपा करिके आज्ञा करी कि–तुम्हारो मनोरथ पूर्ण होयगो। वा समय तो इतनो ही आशीर्वाद दियो। फेर एक दिन श्रीगुसाईंजी ने श्रीबालकृष्णजी की अत्यन्त आर्ति देखिके श्रीस्वामिनीजी के दोऊ श्रीहस्त में धारण करवे योग्य जड़ाऊ चूड़ा दिये, और आज्ञा करी कि–तुमकों जब श्रीद्वारकाधीश की स्वामिनी जी प्राप्त होयँ, तब उनके यह आभरण श्रीहस्त में धराइयो। जिनके यह बैठ जायँगे उनकूँ श्रीद्वारकाधीशजी के स्वामिनीजी जानियो ।

वा समय श्रीबालकृष्णजी ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करि विनय करी कि–आप कृपाकर यह और आज्ञा दें कि–मैं कैसे उन स्वरूप कूँ प्राप्त करूँ ? तब श्रीगुसाईंजी ने आज्ञा करी कि–तू व्रज में जायो कर, वहाँ सूँ तेरो मनोरथ सिद्ध होयगो। श्रीबालकृष्णजी आज्ञा ले सेवा में पधारे, और श्रीद्वारकाधीश के आगे साष्टांग, प्रणाम करिके उनने श्रीप्रभुन सों विनती करि कि–मेरो मनोरथ पूर्ण करनो आपके हाथ है। तब श्रीद्वारकाधीश आज्ञा किये कि–जैसे तोसों काका ने कही है, वैसे ही करो ।

श्रीबालकृष्णजी वा दिन सूँ राजभोग की सेवा पहुँचिके मध्यान्ह समय और शयन की सेवा पहुँचिके रात्रि में (दोनो समय) प्रतिदिन व्रज में पधारवे लगे। आप वन-उपवन सर्वत्र पधारते। श्रीगोकुल के निकट तो ऐसे ही करते, परन्तु जब दूर पधारनो भयो, तब राजभोग करके पधारते। सो दिनभर व्रज में रहते और सायंकाल घर पधारते। घर में श्रीप्रभुन की सेवा आपके परमप्रिय भाई यदुनाथजी (उपनाम, श्रीमहाराजजी) करते ।

एक समय श्रीबालकृष्णजी विहारवन, रामघाट, भूषणवन, निवारण वन होते भए माघ वदि ४ रविवार संवत् १६३८ के दिन गुंजवन पधारे। वाही दिन श्रीयमुनाजी में स्नान कर तट पे ही आपने मध्यान्हः सन्ध्या और अवशिष्ट आह्निक कियो। नित्य नियम सों पहुँचिके आप ठाड़े भए। ठीक मध्यान्ह समय आपने देख्यो कि–श्री यमुनाजी में सूँ श्यामस्वरूप, परम मनोहर, अतिलावण्ययुक्त, सात वर्ष के प्रतीयमान किशोरवय कुमारिकारूप, कोटिकंदर्प–लावण्यमय स्वरूपात्मक श्रीयमुनाजी मद

हास्य करते, श्रीहस्त में कमल फिरावते ललित गति सूँ सम्मुख पधार रहे हैं।

श्रीबालकृष्णजी आपके स्वागत के लिये दो-चार पेंड आगे पधारे। आपने समीपमूँ आछी तरह दर्शन कर साष्टाङ्ग प्रणाम करिकें आनंदाश्रु-सहित सहर्ष विनती करी---"प्रभु! आज मेरे भाग्य कौ पार नहीं। श्रीगोकुल में भी आज ही रात्रि में आपने कृपा करके मोकू स्वप्न-दर्शन दिये, वाही समय मैंने निद्रा में आपकौ स्तवन कियो, तभी मोकूँ दृढ निश्चय भयो-कि-आज के प्रातःकाल अवश्य ही मेरे भाग्योदय होने चाहिएँ, आज निश्चय मेरो मनोरथ सफल होयगो। सोई भयो। जो दर्शन रात्रि कूँ स्वप्न में भए, वही साक्षात् दर्शन आपश्री ने मो रंक पे कृपा करिके दिये। अब कृपा करिकें जो आप आज्ञा करें, सो ही करूँ।

तब श्रीयमुनाजी ने आज्ञा करी कि-"पहिले हमारे आभूषण हमकों देउ"। यह आज्ञा सुनिके श्रीबालकृष्णजी कों अनुसन्धान भयो और श्रीगुसाईजी के दिए भए कंकण की स्मृति आई। क्योंकि आप तो श्रीयमुनाजी के दर्शन कर प्रेमासक्त होय देहानुमान भूल गए हते. यहाँ तक कि—कछु विनती हू करते न बनी हती।

जब श्रीस्वामिनी श्रीयमुनाजी नें अपनी वस्तु माँगी, तब आपकों सुधि आई। वा समय आपनें झट फेंट में सूँ जड़ाऊ कंकण निकासिकें आपश्री के श्रीहस्त में धराए, सो कहूँ सूँ ओछे अथवा ढीले न भए। अतिनम्रता सूँ दोऊ कर जोड़कें श्रीबालकृष्णजी ने विनती करी कि—"कृपा कर आप श्रीद्वारकाधीश के पास पधारिकें मोकों सनाथ करिये।" तब श्रीयमुना महाराणीजी ने अति प्रसन्नता सूँ आज्ञा करी कि—"हाँ! तुम्हारो मनोरथ पूर्ण भयो, हमारी इच्छा तुम्हारे यहाँ श्री के पास पधारवे की है. सो हमकों ले चलो"।

श्रीबालकृष्णजी ने स्वरूप के पधरायवे की सब तैयारी पहले से ही कर राखी हती। सुखपाल इत्यादि सब सामान तैयार हतो, सो आपने श्रीमहाराणीजी कों गोद में पधराय सुखपाल में पधराये, और सुखपाल के संग श्रीबालकृष्णजी चरणारविन्द सूँ गोकुल पधारे। वहाँ पहुँचकर आप सायंकाल की सेवा में पधारे। श्रीमहाराणीजी कों सुखपाल में सूँ पधराय श्रीद्वारकाधीश के पास न पधराय सिंहासन के पास एक चौकी पे न्यारे पधराये।

त्रयोदश उल्लास



समयानुसार जब श्रीबालकृष्णजी के अनन्तर उनके बडे लालजी श्रीद्वारकेश्वरजी श्रीद्वारकाधीश के घर के टीकेत भए, और श्रीयदुनाथजी के बडे लालजी श्रीमधुसूदनजी स्वतंत्र भए, तब आपस में इन भाइन ने सलाह करी कि–"दादाजी काकाजी के आगे तो घर की एकता निभ गई, और हमारे तुम्हारे भी श्री की कृपासों यावज्जीवन निभेगी। परंतु आगे समय–काल बहुत कठिन आवेगो, तासूँ हमारे तुम्हारे ही सामने जुदो व्यवहार होय जानो चहिए"। या निश्चय पे मधुसूदनजी ने कही कि–"श्रीबाल-कृष्णजी ठाकुरजी हमारे ठाकुरजी हैं सो हमकूँ पधराय देओ, अब हम न्यारे रहेंगे"। तब द्वारकेश्वरजी ने कही कि–"हमारे दादाजी की आज्ञा हमकों श्रीठाकुरजी पधराय देवे की नहीं भई है, और कई दिनसूँ ठाकुरजी हमारे श्रीद्वारकाधीश की गोद में बिराजे हैं। अब तो हम न देंगे"।

ऐसे द्वारकेश्वरजी ने जब छल कियो, तब मधुसूदनजी श्रीगोकुलेशजीसूँ जाय पुकारे–"जो देखो काकाजी! हम दादासों न्यारे भए हैं, परन्तु वे हमारे ठाकुरजी हमकों नहीं देंय हैं। श्रीतातचरण ने आज्ञा करके भेले पधराए हैं, सो आपहू जानें हैं, और दादाजी काकाजी के परस्पर लेख हू हैं। तोहू दादा मोसूँ छल करे हैं"। तब श्रीगोकुलेशजी आज्ञा किए जो–मैं समझाय दऊँगो।

श्रीगोकुलेशजी ने अपनो खवास द्वारकेश्वरजी के पास पठायो और कहवाई कि–"कछु कार्य है, सो आपकों, काकाजी बुलावें हैं"। यह सुनत ही द्वारकेश्वरजी श्रीगोकुले-शजी के पास पधारे। तब श्रीगोकुलेशजी ने श्रीगुसाईंजी के आगे कौ सब वृत्तांत आज्ञा कियो, और समुझायो कि–"जा समय काका ने बँट कियो तब हमहू पास हते। हमारे आगे की बात है। तुम छोटे भाईसूँ ऐसो छल मत करो। क्योंकि काका ने दादा सूँ स्पष्ट आज्ञा करी हती कि–महाराजा के वंश के जब तुम्हारे घरसों न्यारे होयँ, तब श्रीठाकुर-जी इनकों पधराय दीजो, ऐसी आज्ञा भई है, सो तुम हठ मत करो। ये देशाधिपति के पास जाय पुकारे, तो आछो न दीखे। तासूँ ठाकुरजी इनकूँ पधराय देने ही उचित हैं।"

तब द्वारकेश्वरजी ने कही कि–" ठीक, आप बडे हैं, आपकी आज्ञा तें मैं पधराय दऊँ हूँ "। तदनन्तर श्रीमधुसूदनजी ठाकुरजी पधराय न्यारे रहिवे लगे। सो एक वर्ष पर्यंत उननें श्रीबालकृष्णजी की आनंद–पूर्वक सेवा करी। एक दिन श्रीबालकृष्णजी ने स्वप्न में मधुसूदनजी कों अनुभव करायो जो–" तुम्हारो मनोरथ वर्ष दिन सिद्ध कियो, अब पाछे मोकूँ श्रीद्वारकाधीश के यहाँ पधराओ "।

दूसरे दिन श्रीमधुसूदनजी राजभोग आरती भए पीछे श्रीबालकृष्णजी कों झाँपी में पधरायकें श्रीद्वारकेश्वरजी के पास ले आए। वा समय श्रीद्वारकाधीश के राजभोग आए हते। द्वारकेश्वरजी हाथ में झापी देख भाई सूँ हँसिके बोले :–" भाई मधुसूदनजी ! झाँपी लेके कैसे आए ? एक ठाकुरजी तो ले गए, अब दूसरे का व्याज में लेवे आये हो " ?

तब श्रीमधुसूदनजी ने कही कि–" आगे मने जो कुछ कही होय, सो अपराध क्षमा करो। इन ठाकुरजी कों तो आपके ही यहाँ सुहाय है, सो पाछे श्रीद्वारकाधीश के गोद में पधरायवे आयो हूँ सो पधराइये "।

तब द्वारकेश्वरजी ने कही–" भाई, ये ठाकुरजी हैं, हँसी–खेल नहीं है। तुम तो वेर–वेर लाओगे, वेर–वेर फेर ले जाओगे, सो ऐसे तो हमारे नहीं बने। तासूँ तुमहीं सुखेन सेवा करो "। तब मधुसूदनजी ने कही कि–" श्रीठाकुरजी की इच्छा यहाँ ही विराजवे की है, ताको मैं कहा करूँ ? " तब द्वारकेश्वरजी बोले कि–" तुम काकाजीकों लाओ। काकाजी ही पधरवाय गए हैं। काकाजी की ही आज्ञासूँ हमने पधराय दिये हैं, तासूँ उनकों लाओ। वे जैसे आज्ञा करेंगे, ऐसे हम करेंगे "। तब श्रीमधुसूदनजी श्रीठाकुरजी की झाँपी वहाँ ही चौकी पे पधराय श्रीगोकुलेशजी कों पधरायवे गए। वहाँ जाय प्रणाम करि स्वप्न की सब बात कहिके विनती करि कि–" आपके चले बिना कछु कार्य सिद्ध न होयगो "।

तब श्रीगोकुलेशजी संग पधारे, और द्वारकेशजी कूँ आज्ञा करी कि–" ये चलायकें पधरायवे आए हैं, तो पधराय लेओ "। तब द्वारकेश्वरजी ने विनती करी कि–" ये वेर–वेर पधरावें, वेर–वेर लेवे आवें, ऐसे मेरे ठीक न पड़ेगी "। तब श्रीगोकुलेशजी ने श्रीबाल-कृष्णजी ठाकुरजी सूँ पूँछी–" कहा इच्छा है ? " तब ठाकुरजी ने आज्ञा करी कि–" मैं तों द्वारकाधीश के भेले रहूगो " तब श्रीगोकुलेशजी ने श्रीमधुसूदनजी सों कही कि–

" बाबा ! तुम्हारो कथन ठीक हतो। इन ठाकुरजी की ही इच्छा तुम्हारे यहाँ बिराजवे की नहीं है ! तासूँ अबके पधराए तुमकूँ फिर पाछे न मिलेंगे। याकौ बंदोबस्त कर लेख कर पधराओ। जामें फेर आगे को झगडा न रहे "।

तब वा समय परस्पर स्वीकृति कौ लेख भयो। अक्षर भए। श्रीमधुसूदनजी ने लेख कियो, तामें ठाकुरजी सों नादावा लिख्यो और श्रीगोकुलेशजी प्रभृति जो गोस्वामि-बालक वा समय विराजते हते सो उनकी हू साक्षी भई। तत्पश्चात् द्वारकेश्वरजी ने श्रीबालकृष्णजी कूँ श्रीद्वारकाधीश की गोद में पधराए, और बड़ो आनंद मान्यो। ता पीछे श्रीद्वारकाधीश श्रीबालकृष्णजी सहित श्रीगोकुल में श्रीद्वारकेश्वरजी के घर सुख-पूर्वक बिराजे।

कछुक समय बाद सेवा करवे के ताईं श्रीगोकुलेशजी ने श्रीमधुसूदनजी के माथे श्रीकल्याणरायजी ठाकुरजी पधराय दिये, सो हाल शेरगढ़ (कोटा जिला) में बिराजे है।*

श्रीगुसाँईजी श्रीविट्ठलाधीशजी के तृतीय पुत्र श्रीबालकृष्णजी के छः पुत्र भए। तामें प्रथम ज्येष्ठ पुत्र श्रीद्वारकेश्वरजी घर के टीकेत भए। दूसरे पुत्र श्रीव्रजनाथजी, तीसरे पुत्र श्रीव्रजभूषणजी, चौथे पुत्र श्रीपीताम्बरजी, पाँचवें पुत्र श्रीव्रजालंकारजी, और छठे पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी भये।

प्रथम पुत्र श्रीद्वारकेश्वरजी के दो पुत्र भए। तामें बड़े श्रीअनिरुद्धजी और छोटे श्रीगिरधरलालजी हते। श्रीअनिरुद्धजी थोड़े ही समय भूतल पर बिराजे, जासूँ श्रीद्वारकेश्वरजी के दूसरे पुत्र श्रीगिरधरलालजी या घर के टीकेत भये। इनके एक पुत्र श्रीद्वारकानाथजी और एक कन्या श्रीगंगा बेटीजी भई। श्रीगिरधरलालजी के आगे श्रीद्वारकानाथजी प्रभुन की सेवा करते। इनके बहूजी कौ नाम श्रीजानकी बहूजी हतो।

श्रीद्वारकानाथजी कों विशेष विद्या प्राप्त न हती, यासूँ कोई ने उनकूँ प्रयोग बतायो कि-सूर्यग्रहण में काशीपुरी में गंगाजी में ठाढ़े रहके सरस्वती को बीजमंत्र लिखो, तो विद्या आवेगी। सो श्रीद्वारकानाथजी ने वाके कथन-प्रमाण ही काशी जायके मंत्र-साधन कियो, यासूँ उनकों अच्छो विद्याभ्यास भयो। विद्याभ्यास करे

* सम्प्रति कछुक वर्षन तें (अब) श्रीकल्याणरायजी बडौदा में विराजत हैं।

पीछे वे गोकुल पधारे, सो श्रीद्वारकाधीश ने इनको त्याग कियो। स्वप्न में आज्ञा करी कि–" मेरो आश्रय छोड़िके तुमने अन्य को आश्रय कियो, सो तू अब हमारे काम को नहीं।" श्रीप्रभु की यह आज्ञा सुनते ही श्रीद्वारकानाथजी श्रीप्रभुन की सेवा के अनुपयोगी अपनो शरीर जान केवल धोती उपरणा और तुलसीकाष्ठमाला हाथ में ले व्रज में पधार अन्तर्धान होय गये। याहीसों इनको नाम टीकेतन में नहीं है। व्रज पधारते समय इनके पत्नी श्रीजानकी वहूजी संग जायवे लगे, तब श्रीद्वारकानाथजी ने कही कि—"तुम्हारे सांचे पति श्रीद्वारकाधीश हैं, सो तुम यहां ही रहो, और सेवा करो।" सो पति की आज्ञा मानि श्रीजानकी वहूजी घर में श्रीप्रभुन की सेवा में तत्पर रहे।

श्रीगिरधरलालजी ने श्रीप्रभुन की इच्छा जानि पुत्र को कछू भी परिताप न कियो। समयानुसार जब श्रीगिरधरलालजी को अवसान–समय प्राप्त भयो, तब आपने गंगावेटीजी तथा पुत्रवधू जानकी वहूजी कूं आज्ञा किये (आपके पत्नी पुत्र-शोक में ही लीला में प्राप्त भए हते) कि–"·लालजीकों द्वादश वर्ष होय जायँ, तब जानकी वहूजी कों लौकिक रीति करैयो। श्रीप्रभुन की सेवार्थ या तीसरे घर की गादी पे श्रीबालकृष्णजी के तृतीय पुत्र श्रीव्रजभूषणजी के वंशज श्रीवल्लभजी के पुत्र लालजी व्रजभूषण को शास्त्र और न्याय सूँ हक पहुँचे है।" यह आज्ञा और लेखपत्र करिके श्रीगिरधरलालजी नित्यलीला में पधारे। आपके अनन्तर श्रीद्वारकाधीश, श्रीगंगावेटीजी, श्रीजानकी वहूजी तथा श्रीलालजी श्रीव्रजभूषणजी के माथे विराजे।

श्रीगंगावेटीजी ने श्रीजानकी वहूजी सों सलाह करिकें श्रीव्रजभूषणजी कों श्रीगिरिधरलालजी की इच्छा तथा आज्ञानुसार गादी बैठाये। क्योंकि श्रीबालकृष्णजी के द्वितीय पुत्र को वंश समाप्त होय गयो हतो, और तृतीय पुत्र श्रीव्रजभूषणजी के वंश को हक पहुँचतो हतो।

॥ त्रयोदशोल्लासः समाप्तः ॥

चतुर्दश उल्लास।

—— :o ——

श्रीबालकृष्णजी के तृतीय पुत्र श्रीव्रजभूषणजी के वंशज श्रीवल्लभजी के पुत्र श्रीव्रजभूषणजी जब गादी विराजे, वा समय आपकी बाल्यावस्था हती। आप बडे प्रतिभाशाली और तेजस्वी बालक हते। श्रीगोकुल में आप श्रीद्वारकाधीश की सेवा बड़े प्रेम भक्ति सों श्रीगंगाबेटीजी तथा श्रीजानकी बहूजी की आज्ञानुसार करते। और प्रतिदिन आप मन लगायकर विद्याभ्यास करते।

एक समय मेदपाट (मेवाड़) देश के राजा महाराणा श्रीजगतसिंहजी व्रजतीर्थयात्रार्थ मथुराजी आये। वहाँ से वे दर्शनार्थ एकदिन वृन्दावन गये। उष्णकाल के दिन हते, तो भी राजा को आगमन सुन सब मन्दिरवारेन ने श्रीठाकुरजी कों जरी, कीमखाब, जरदोजी के वस्त्र और भारी-भारी आभरण धराये हते। उदयपुर दरबार कूँ जहाँ-जहाँ दर्शन करने हते, वहाँ-वहाँ वे गये।

एक दिन महाराणा गोकुल भी दर्शनार्थ आए, सो यहाँ तो सर्वत्र ऋतु के अनुसार सेवा होती हती। राणाजी और एक-दो मंदिर में दर्शन कर श्रीद्वारकाधीश के दर्शन करवे मंदिर में आए, सो यहाँ राजभोग के दर्शन को समय हतो। वा समय राज-भोग धरिके श्रीव्रजभूषणजी मदिर की तिवारी में नित्यनियम, जप-संध्यादि करते हते। महाराणा ने महाराज कों प्रणाम किए। महाराज ने आशीर्वाद दियो। वा समय श्रीद्वारकाधीश की कृपा सों व्रजभूषणजी महाराज ने कछु एसो चमत्कार दिखायो जासों स्वतः राणाजी के मन में श्रद्धा उत्पन्न होय गई।

जा समय राणाजी वृंदावन गये हते, तब वहाँ कोइ ने ऐसी बात उनके कान पे डारी हती-" ये, वल्लभाचार्यजी की सम्प्रदाय के आचार्य लोग स्वीयाभिमानी बहुत होय हैं, अर्थात्—अपने संप्रदाय की बड़ाई बहुत करे हैं"। यह बात उदयपुर दरबार ने अपने मन में राखी हती। गोकुल दर्शनार्थ आए, तो प्रथम श्रीद्वारकाधीश के टीकेत श्रीव्रजभूषणजी महाराज सूँ ही समागम वार्तालाप होयवे को अवसर प्राप्त भयो। यहाँ श्रीप्रभुन की कृपा सूँ महाराज के दर्शन को प्रभाव दरबार के चित्त पर जम

गयो। राणाजी ने अपने पास के मनुष्यनसूँ कही कि—ये महाराज बाल्यावस्था में कैसे तेजस्वी और बोलवे-चालवे में कैसे विद्वान् हैं।

ऐसे कहिके श्रीव्रजभूषणजी महाराज सूँ दरबार ने हाथ जोड़के विनती करी कि-महाराज! आज्ञा होय, तो मेरे मन में कछु शंका है, सो वाके निवारण के अर्थ प्रश्न करूँ? तब महाराज ने आज्ञा करी कि-राजन्! अवश्य, सुखेन जो-शंका होय सो पूछिये। तब महाराणाजी ने आपसूँ चार प्रश्न किये :—

प्रथम-सब देवतान में कौनसे देव बड़े हैं? दूसरो- सब तीर्थन में कौनसो तीर्थ बड़ो है? तीसरो- सब पर्वतन में कौनसो पर्वत बड़ो है? चौथो- सब नदीन में कौनसी नदी बड़ी है?

राणाजी के ये चार प्रश्न सुनिकें श्रीव्रजभूषणजी महाराज बहुत प्रसन्न भए, और आपने इन चारों प्रश्नन कौ या प्रकार उत्तर दियो :-

"राजन्! प्रथम आपने देवन की पूछी, सो देवन में श्रीजगदेव (जगदीश) बड़े हैं। फिर तीर्थन की पूछी, सो पुष्करजी तीर्थ बड़ो है। और पर्वतन की पूछी, सो सुमेरु पर्वत बड़ो है। और नदीन की पूछी, सो चरणोदकी गंगाजी हैं, सो बड़ी हैं।"

तब महाराणाजी ने फिर विनती करी कि-देवतान में श्रीगोवर्द्धननाथजी बड़े नहीं हैं? तब महाराज ने आज्ञा करी, जो वे देवतान में नहीं हैं, वे तो देवतान के भी देवता, देवाधिदेव, देवेन्द्र हैं। आपने तो देवतान की पूछी, सो पृथ्वी के देवन में तो जगदीश ही बडे हैं। श्रीगोवर्द्धननाथजी तो साक्षात् गोलोक-नाथ हैं।

तब फिर दरबार ने विनती करी, जो तीर्थन में व्रज तीर्थ बडो नहीं है? तब महाराज ने आज्ञा करी कि-व्रज है, सो साक्षात् गोलोक-धाम श्रीप्रभुन कौ मुख्य निवास रूप निज-धाम है। और आपने तो पृथ्वी के तीर्थन की पूछी, सो तीर्थ में तो पुष्करराज ही मुख्य तीर्थ है।

तब दरबार ने फिर विनती करी कि-पर्वतन में श्रीगिरिराजजी बडे नहीं हैं? तब महाराज ने आज्ञा करी कि-श्रीगिरिराजजी तो श्रीनाथजी (श्रीगोवर्द्धनधरण) की लीला कौ मुख्य स्थल है। जब जा समय, जा ऋतु में जो लीला करवे की प्रभु की इच्छा होय है, तब वाही क्षण वो लीला-सामग्री श्रीगिरिराज में विद्यमान रहे है। मुख्य श्रीवृंदावन हू आप ही में है। और श्रीगिरिराज साक्षात् श्रीप्रभुन कौ ही स्वरूप है। आप सेव्य सेवक दोनों भाव सूँ विराजे हैं, लौकिक चर्मदृष्टि सूँ पर्वतरूप

भौतिक आकृतिमात्र है, वस्तुतः तो ईश्वर ही हैं। क्योंकि प्रभुन की प्रभुता वाही मे विशेष गिनी जाय है जामें अज्ञानमूढ निःसाधन जीव भी ईश्वर जान भजनीय, सेवनीय, पूजनीय बुद्धि राखे हैं। यथा—

ईश्वरः पूज्यते लोके मूढैरपि यदा तदा। निरुपाधिकमैश्वर्यं वर्णयन्ति मनीषिणः ॥ १ ॥

ताहू यह भाव मुख्य है। और आपने तो पर्वत की पूछी, सो पर्वत तो मेरु ही बड़ो है।

तब दरबार ने फिर विनती करी कि–जो नदीन में श्रीयमुना महारानीजी बड़ी नहीं हैं? तब महाराज ने आज्ञा करी–जो ये नदी–संज्ञा में नहीं हैं। आधिभौतिक स्वरूप सूँ जलप्रवाह की भ्रांति-मात्र चर्मदृष्टि सूँ होय है। वस्तुतः तो ये साक्षात् श्रीप्रभुन के चतुर्थस्वामिनी-स्वरूप आधिदैविक मूर्तिमत् विराजे हैं। और ये महान् अलौकिक अष्ट सिद्धि की देयवेवारी हैं। इनकी कृपा सूँ स्वभाव कौ विजय होय भगवच्चरण वेग प्राप्त होय हैं। ताही सूँ इनकौ 'महाराणीजी' यह विशेषण है। वैसे ये चतुर्थ स्वामिनी हैं, परंतु कितने ही प्रभुन की लीला-संबंध में इनकी मुख्यता है। आपने तो नदीन की पूछी, सो नदीन में तो चरणोदकी गंगाजी ही बड़ी हैं।

या प्रकार श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने महाराणाजी के चारों प्रश्नन कौ उत्तर दियो, सो महाराणाजी सुनिकें बहुत ही प्रसन्न भए।

समय भये पीछे महाराज राजभोग सरायवे सेवा में पधारे। तब महाराणाजी ने अपने मंत्री पार्षद, जो पास हते, उनसूँ महाराज की अत्यंत प्रशंसा करी और कही कि–वाह! ये आचार्य धन्य हैं। गुरु और आचार्य तो ऐसे ही होने चाहियें। इतने में राजभोग के दर्शन खुले। महाराणाजी ने श्रीद्वारकाधीश के दर्शन किये, सो दर्शन करते ही महाराणाजी प्रेमासक्त होय गए।

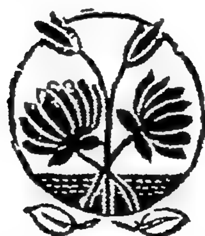
दर्शनानन्तर सेवासूँ पहुँच श्रीव्रजभूषणजी अनवसर भए पीछे बाहर पधारे। महाराणाजी कूँ प्रसादी माला बीडा दिये। राणाजी ने विनयपूर्वक मस्तक चढ़ाए, और हाथ जोड़ विनती करी कि–कृपा करके मोकूँ शरणमंत्र की दीक्षा दीजिए। आप गुरु हो, वड़े हो। मेरो चित्त आपके दर्शन सूँ, वार्तासूँ, आपके ठाकुरजी के दर्शन सूँ बहुत ही प्रसन्न भयो, और मोकूँ बहुत संतोष भयो है। तब श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने महाराणाजी जगतसिंहजी कूँ 'शरणमंत्र' की दीक्षा प्रदान कर शिष्य किये।

तब महाराणाजी ने हाथ जोड़ अति नम्रता सूँ विनती करी कि–आज मेरे अहो-भाग्य हैं, जो राज ने मेरो हाथ पकड्यो, आप तो बड़े हैं, आचार्य–कुल हैं। आपके कहा बात की कमी है। परंतु कंठी–बँधाई की भेंट में मेवाड़ में एक गाम आसोटिया नामक है, सो आपके भेंट श्रीठाकुरजी के तुलसीपत्र कृष्णार्पण है। याकौ ताम्रपत्र उदयपुर तें लिखाय आपकी सेवा में भेज दियो जायगो।

यह विनती कर, प्रणाम कर, विदा होय जब महाराणाजी मथुरा जायवे लगे, तब जाते–जाते महाराज ने राणाजी सूँ कही कि–अब आप तीर्थपर्यटन कूँ आये हो तो श्रीनाथजी सूँ सम्मुख होयकें फेर अन्यत्र पधारियो, सो राणाजी ने गुरुन की आज्ञा माथे चढ़ाई।

राणाजी ने उदयपुर जायके गाम आसोटिया को ताँबापत्र सही करके गुरुन के पास गोकुल पठाय दियो+।

॥ चतुर्दशोल्लासः समाप्तः ॥



+ जिन श्रीव्रजभूषणजी महाराज ने श्रीद्वारकाधीश की यह प्राकट्यवार्ता अपने पिता श्रीगिरिधरलालजी की आज्ञानुसार लिखी है, वे ही 'नीति–विनोद' ग्रन्थ के कर्ता हैं। इनने महाराणाजी के सेवक होयवे के प्रसंग लिखे, पीछे यह भी प्रसंग लिख्यो है—

"याही प्रकार एक समय जयपुर के राजाजी माधवसिंहजी (प्रथम) राजा किशोरसिंहजी के भाई हते, जो उदयपुर महाराणा दूसरे अमरसिंहजी के भानेज हते। श्रीद्वारकाधीश की कृपा सूँ किशोरसिंहजी के पीछे माधवसिंहजी जयपुर के राजा भए। राजा माधवसिंहजी भी श्रीद्वारकाधीश की शरण आय हमारे ही सेवक भए। इनने भी महाराणाजी की तरह यही चार प्रश्न हमसूँ किये। हमकूँ हमारे श्रीदादाजी की आज्ञा याद हती, और यह प्रसंग खबर हतो, सो हमने हू राजाजी कूँ श्रीतातजी श्रीव्रजभूषणजी की आज्ञा स्मरण करके याही प्रमाण उत्तर दियो हतो।"

पञ्चदश उल्लास।

—— ·o: ——

श्रीबालकृष्णजी के चतुर्थ पुत्र श्रीपीताम्बर के पौत्र और श्रीश्यामलजी के पुत्र श्रीव्रजरायजी हते। वे वा समय काशी में विद्याभ्यास करते हते। उनने काशी में यह सब वृत्तांत सुन्यो, जो श्रीद्वारकाधीश को टीकैतपनो श्रीजानकीवहूजी तथा श्रीगंगाबेटीजी ने श्रीव्रजभूषणजी कूँ दियो है, और उदयपुर के महाराणा भी उनके सेवक भये हैं। इत्यादि।

यह सुनिके व्रजरायजी कूँ सहन न भई। ये व्रजरायजी चौथे लालजी के वंश में हते, तो भी संबंध में वे व्रजभूषणजी (जो तीसरे लालजी के वंश में हते और सशास्त्र गादी के हक्कदार हते ताही सूँ वे टीकैत भए) के काका और व्रजभूषणजी उनके भतीजा लगते हते। व्रजरायजी काशी सूँ गोकुल आए, और आते ही उनने अधिकार को झगड़ा प्रारंभ कियो।

श्रीव्रजरायजी ने श्रीगंगाबेटीजी तथा श्रीजानकीवहूजी सूँ कही कि– श्रीगिरिधरलालजी तो हमकूँ घर दे गए हैं। तुमने व्रजभूषणजी कूँ घर कैसे दियो? बड़ो तो मैं हूँ। तुमने मेरे पूछे विना यह कार्य क्यों कियो?

तब गंगाबेटीजी ने कही कि–श्रीदादाजी महाराज के अवसान–समय तो तुम हते नहीं। और वा समय दादाजी ने हम दोउन कूँ आज्ञा करी, जो–" तुम काहू बात की चिंता मति करो। प्रभुन की सेवा शुद्ध दृढ भक्ति सूँ करे जाओ। तीसरे लालजी के वशवारे व्रजभूषणजी को हक्क पहोंचे है, सो उनको अधिकार या घर पे है। हमने तो आज्ञा प्रमाण ही किया है। ता उपरांत तुम्हारे वृथा लड़ाई–झगड़ा करनो होय, तो भले ही तुम्हारी इच्छा, तीसरे पुत्र के वंश के पीछे चौथे पुत्र के वंश को दावा चलेगो। और हम वहू–बेटीन के संग तुम झगड़ोगे, सो तुम्हारो आछो न दीखेगो। जा समय लालजी बडे होयँ सब– बात विवेक परायो समझें, तहाँ तक तुमहू हमारे भेले रहो, सेवा करो, याकी कछु हमारी नाहीं नहीं है। निष्कारण लड़िबे में सार नहीं है। घर के अन्य बालकन सूँ न्याव कराओ, और सब ज्ञाति के पंच जो

न्याव कर दें सो हमकूँ तथा तुमकूँ मंजूर है, ऐसे अपन अक्षर लिखदें। न्याय प्राप्त होय सो करवे कूँ हम तैयार हैं"।

या प्रकार गंगाबेटीजी ने व्रजरायजी कूँ बहुत समझायो, परंतु व्रजरायजी तो पक्के लड़ाक हते। उनने काहू की न मानी, और आगरा जायके पृथ्वीपति पे अर्जी दीनी। अर्जी कों सुनके गंगाबेटीजी तथा जानकीबहूजी लालजी व्रजभूषणजी कूँ लेके आगरे पधारे। और इनने व्रजरायजी की अर्जी की उजरदारी करी।

वा समय बादशाह औरंगजेब राज्य करते हते। पृथ्वीपति ने गंगाबेटीजी सूँ हिन्दू कामदार द्वारा व्रजरायजी की अर्जी कौ खुलासा मँगायो, सो गंगाबेटीजी ने कामदार कूँ रीति-प्रमाण उत्तर कहवायो कि—हमने हमारे हिन्दूधर्मशास्त्र-प्रमाणे हक्क पहोंचते कूँ दियो है। कामदार ने राज्य में जायकें पृथ्वीपति सूँ मालूम करी। तापे पृथ्वीपति ने न्याय करिकें व्रजरायजी कौ दावा ख़ारज कियो। न्याय भये पीछे पृथ्वीपति के यहाँ सूँ श्रीव्रजभूषणजी के मालकी हक्क कौ परवाना गंगाबेटीजी ने करायो। वो परवाना लेके दावा जीतिके वे सब श्रीगोकुल पधारे, और व्रजरायजी आगरा में ही रहे।

याके अनन्तर व्रजरायजी ने नित्त नए उपद्रव उठाने प्रारंभ किए। व्रजरायजी कौ यह इरादा भयो कि—कैसे भी करके गंगाबेटी प्रभृति कूँ चैनसूँ नहीं रहवे देने। यह सोचके एक समय व्रजरायजी धाड़ेती (डकैतो) वारेनसूँ मिले। धाड़ेतीन के संग गोकुल आयके उननें द्वारकाधीश के मंदिर पे धाड़ा गेर्यो। सो श्रीप्रभुन सहित सब वस्तु ले गए। तापे गंगाबेटीजी, जानकीबहूजी, व्रजभूषणजी सबन कूँ बहोत खेद भयो। या प्रसंग तें श्रीजानकीबहूजी तथा श्रीगंगाबेटीजी फिर आगरा पधारे। पृथ्वीपति की मदद सूँ व्रजरायजी सूँ अपने प्रभु श्रीद्वारकाधीश तथा श्रीबालकृष्णजी तथा श्रीमदाचार्यजी के पादुकाजी प्रभृति सब निधि पाछे प्राप्त किए। आषाढ़ शुक्ल ५ कूँ चोरी धाड़ा में सूँ श्रीप्रभु पाछे पधारे, तब सूँ श्रीद्वारकाधीश कौ पाटोत्सव आषाढ़ शुक्ल ५ कूँ प्रतिवर्ष मान्यो जाय है।

श्रीगंगाबेटीजी प्रभृतिन ने वा दिन बहुत आनंद मान्यो। वे सब प्रभुन की बहुत ही रखवारी सावधानी राखवे लगे। परंतु व्रजरायजी कछु-न-कछु उपद्रव करते ही रहे। यासूँ गंगाबेटीजी प्रभृति मनसूँ बहुत ही दुःखी रहवे लगे। फिर व्रजरायजी ने दूसरो ढंग निकास्यो। वे पृथ्वीपति की नित्य हाजरी साधवे लगे। और अनेक

प्रकार सूँ पृथ्वीपति की निगाह इनकी तरफ आवे, या उपाय में लगे। ऐसे करते उनकों छः महिना वीत गए।

एक दिन पृथ्वीपति शिकार खेलवे गए। वहाँ यह व्रजरायजी भी अपने घोड़ा पर वैठिके गए। वादशाह के साथी सब पाछे रह गए, और वादशाह शिकार के पीछे घोडा दौड़ाते दूर निकस गए। धूप होय गई और शिकार भी भई नहीं, सो वादशाह और भी घबराए हते। पीछे फिरके उनने देख्यो तो एक सवार दूर आतो दीख्यो। वादशाह एक पेड़ की छाया में वा सवार की वाट देखते घोड़ा पे बैठे रहे। इतने में सवार नजीक आयो। नजीक आते ही घोड़ा पर सूँ उतर वा सवार ने वादशाह के पास आय आशीर्वाद दियो और उनके घोड़ा की लगाम पकड़ लीनी। पाछे अर्ज करी कि—आप धूप में घबराय गए हैं, सो उतरिये। आपके साथी लोग बहोत पीछे हैं। उनकूँ आवे में देर होयगी। मैं आपकी सब जरूरियत की हाजरी में हाजर हूँ।

वादशाह वा सवार कौ कहनो सुनिके घोडा पर सूँ उतरे। सवार ने घोड़ा बागडोर सूँ एक पेड़ सूँ बाँध वा पर सूँ घासिया उतार वादशाह के लिये बिछाय दियो। वादशाह बैठ गए। बादशाह कूँ प्यास बहुत लगी हती सो बोले कि—जवान! कहीं जल हो तो तलास करो। इतनी सुनते ही वा सवार ने अपने घोड़ा की जीन में सूँ एक चाँदी की सुराही और प्याला निकारिके वामें जल भरिकें वादशाह कूँ दियो। वादशाह वा सवार की यह हाजरी देख बहुत खुशी भए। जल पीके वादशाह ने कही कि जवान! तू कौन है? मैंने प्रायः तोकूँ मेरी कचहरी में " महलन में भी देख्यो है। हर समय हमारी हाजरी में क्यों रहे है? तू कहा चाहे है? तू कौन है? मैं तेरी आज की पासवानी सूँ वहुत खुशी भयो हूँ।

इतनी सुन वा सवार ने कही—मैं गोकुल के गुसाईं जी के वंश में हूँ। मेरो नाम व्रजराय है। हजूर ने मोकूँ कछु भी न दिवायो। सब गंगाबेटी कूँ दिवाय दियो। मैंने भी वाही वंश में जन्म लियो है, सो कछु तो मोकूँ भी मिल्यो चहिये।

तब पृथ्वीपति ने सुनके कही हाँ, व्रजरायजी तुम्हारो ही नाम है। तुमने गंगाबेटी कूँ तकलीफ भी बहोत दीनी है और हमने तो न्याय ही कियो है। जिनको हक पहुँचतो हतो उन्हीं कूँ देव दिवाए हैं। परन्तु आज तुम्हारी हाजरी सूँ मैं बहोत खुशी भयो हूँ। तुम कहा चाहो हो? तुमकूँ कहा दिवावें?

तब व्रजरायजी ने कही कि खैर, बड़े देव तो आपने उनकूँ दिवाये सो भले, परन्तु

छोटे देव (बडेन की गोद में जो श्रीबालकृष्णजी हैं) तो मोकूँ मिलने चाहिये। तब पृथ्वीपति ने कही—हाँ, ये तुमने ठीक बताई, तुम कायदा सूँ अर्जी करियो, हम सुनाई करेंगे। या प्रकार बातें भई। इतने में बादशाह के साथी भी सब आय गए। बादशाह शिकार सूँ पाछे महलन में गए।

"व्रजरायजी ने पाछी अर्जी दीनी है"—ये सब वृत्तांत गोकुल में गंगाबेटीजी ने सुने। सो सुनिके परस्पर विचार कियो जो—अब अपन कूँ व्रजरायजी व्रजवास छुड़ायके रहेंगे। ठीक, भगवदिच्छा। जो—अपने प्रभु करेंगे सो आछी ही करेंगे।

वा समय आपने कामेतीन कूँ बुलायके कही कि—"छाने, छाने सब तैयारी करिके गुजरात चलो। श्रीद्वारकाधीश के घर के सेवक राजनगर (अहमदाबाद) में हैं, वहाँ चलनो ठीक है"। यह दृढ विचार कर व्रजरायजी कूँ खबर न पड़े ऐसे सब तैयारी करके श्रीगंगा बेटीजी प्रभृति ने श्रीद्वारकाधीश कूँ पधराय श्रीगोकुल सूँ कूँच कियो। वे सब आठ-नौ मंजल गए होयँगे कि—व्रजरायजी छोटे ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी के लिये शाही परवाना गंगाबेटीजी के ऊपर लेयके गोकुल आए। सो आते ही इनकूँ खबर पड़ी कि—श्री ठाकुरजी कूँ तो गंगाबेटीजी पधरायके ले गए। सो गुजरात की तरफ पधारे है।

व्रजरायजी हताश होयके पाछे आगरा गए। वहाँ दो-तीन राजकीय मुसलमान कूँ मिलायके पाछी अर्जी दीनी कि—गंगा बेटीजी अपने देवकूँ लेकर गुजरात (अहमदाबाद) तरफ गए, सो अब हमारे छोटे देव हमकूँ मिलने चाहिये। और याके लिए अहमदाबाद के सूबा पर हुकम मिलनो चाहिये। तापर बादशाह की आज्ञा सूँ व्रजरायजी कूँ उनकी-मनसा प्रमाण छोटे ठाकुरजी की बाबत को परवाना अहमदाबाद के सूबा के नाम को मिल गयो। या सब कार्य में आठ महिना के आसरे समय निकस गयो।

वा परवाना में अहमदाबाद के नबाब के ऊपर यह हुकम हतो कि—तुम्हारे गांम में एक गोकुल के गुसाईंजी आए हैं, उनके पास बड़े देव के संग छोटे देव (ठाकुरजी) हैं उनको नाम बालकृष्णजी है, सो वे छोटे ठाकुरजी इन व्रजरायजी गुसाईं कूँ दिवाय देओगे। सिवाय याके में और कोई तरह को फिसाद ये व्रजरायजी उन गुसाईंजी सूँ न करें ऐसे ठीक राखोगे।

ऐसे हुकम को परवाना लेयके व्रजरायजी अहमदाबाद आए। आते ही इनने नबाब के यहाँ परवाना दियो। सूबा ने परवाना बाँचके कही कि—जहाँ गुसाईंजी

रहते होयँ, वहाँ तुम खबर पाड़के हमकूँ इत्तला करो, तब हम आदमी वगेरे जापता तुम्हारे साथ देयँगे। तब व्रजरायजी तपास करवे गाम में चले। सो इनकूँ वहाँ चार महिना बीत गए, परन्तु कछु पतो लग्यो नहीं।

एक दिन तँबोली की दूकान सूँ व्रजरायजी कूँ पतो लग्यो—कि ये इतने पान रोज कहाँ ले जाय है? पूछताछ करवेसूँ वा तंबोली के घर की स्त्रीन के द्वारा खबर पड़ो कि—इहाँ गोकुल सूँ एक गुसाईंजी आए हैं, वे गुप्त रहे हैं।

तब तो व्रजरायजी ने वा तँबोली की स्त्री कूँ द्रव्य को लोभ देके सब पता ठीक करिके मौका भी देख लियो। मंदिर रायपुर मोहल्ला में हतो, वहाँ श्रीद्वारकाधीश मंदिर के तहखाना (भोंहरा) में विराजते। बाहर दर्शन सर्वसाधारण कूँ नहीं होते। जो बहुत विश्वासपात्र हते, उनही कूँ होते।

एक दिन व्रजरायजी ने सूबा की फौज को घेरा मंदिर के चारों आड़ी दे दियो और आप स्वयं अपरस में होयके एकदम भीतर गए। वहाँ श्रीप्रभुन के राजभोग आयवे को समय हतो, और श्रीबालकृष्णजी कूँ गंगाबेटीजी, जानकीबहूजी तथा व्रजभूषणजी पलना झुलावते हते। सो व्रजरायजी कूँ मुखियाजी ने देखे, सो देखते ही हल्ला भयो, जो व्रजरायजी आए, कहाँ आए? कैसे आए? इत्यादि। वा समय मन्दिर में व्रजरायजी ने तो कछु कही न सुनी, सूधे पलना में सूँ श्रीबालकृष्णजी कूँ हाथ में पधराय लिये। यह देखिके गंगा बेटीजी ने क्रोध करिके शाप दियो—"तूं हमारे घर को पलना बद करे है, सो तेरे हू पलना बद रहेगो, तैंने हमकुं यहाँ हू निष्कारण सताए।"

व्रजरायजी ने शाप कूँ गोद पसारके झेल्यो और कहो कि-अस्तु, आपको आशीर्वाद माथे चढ़ाऊँ हूँ। यह कहिकें वे चले गए। सो वहाँ सूँ वे तो सूधे सूरत पधारे, और यहाँ गंगाबेटीजी प्रभृति सबन को मन अत्यंत उदास भयो, परन्तु भगवदिच्छा मानिके संतोष कियो।

॥ पंचदशोल्लासः समाप्तः ॥



षोडश उल्लास



श्रीगंगाबेटीजी ने आपुस में सबसूँ सलाह करी कि—अब अपन कूँ कहा करनो चहिये ? म्लेच्छन कौ जहाँ—तहाँ राज्य है, यहाँ तो ये ब्रजरायजी ऐसे ही उपद्रव मचावेंगे। आज श्रीबालकृष्णजी कूँ राज के जरिया सूँ ले गए, काल कछू और कर पाड़ें ? तासूँ यहाँ भी अब नहीं रहनो। तब कहाँ श्री कूँ पधराय के चलनो ?

तब कामेतीन ने विनती करी कि—कृपानाथ ! म्लेच्छ—राज्य तो सर्वत्र है। और जो हिंदू राजा हैं, वे भी म्लेच्छन के दबे भए हैं। हाँ, हिंदू राजान में स्वतंत्र, धर्माभिमानी, स्वधर्म—परायण, पूर्णधर्माग्रही कोई राजा है, तो मेवाड़ उदयपुर के राजा हैं। महाराणा जगतसिंहजी ने अपने यहाँ एक गाम हू भेट कियो है। उनके राज्यमें बादशाही हुकूमत नहीं है। तासूँ वहाँ रहिवे में सुख सूँ विराजनो होय सकेगो। यह सुनिके श्रीगंगाबेटीजी ने सबन सूँ सलाह करि महाराणाजी (श्रीरायसिंहजी) कूँ पत्र लिख्यो, और एक भलो मनुष्य पत्र लेके उदयपुर पठायो। महाप्रसाद, उपरना, तिलक, कंठी आदि पत्र के साथ पठाए। सो ये आदमी उदयपुर गयो, और वहाँ महाराणाजी कूँ पत्र महाप्रसाद वगैरे सब दियो। राणाजी ने सत्कारपूर्वक माथे चढ़ाय पत्र बाँच्यो। बाँचिके जो भलो मनुष्य महाराज ने पठायो, वासूँ कही कि, काल याकौ उत्तर मिलेगो। राणाजी ने वा आदमी कूँ उतरवे वगैरे की सब ठीक कराय दीनी।

दरबार ने प्रधान सब मंत्रीन सूँ सलाह करिके गुरुन कौ और श्रीठाकुरजी कौ या प्रकार अकस्मात पधारनो जान परम भाग्य मान हर्ष मान्यो। जनाना में अपने माजी कूँ भी वृत्तांत कह्यो। माजी ने भी अनुमति दीनी कि—ऐसे महात्मा अपनी भूमि में पधारें, तो अवश्य सादर पधराने उचित हैं।

दूसरे दिन महाराज कौ जो भलो आदमी मुखिया आयो हतो, वा कूँ बुलाय के, दरबार ने पूछी—महाराज और श्रीठाकुरजी कहाँ विराजे हैं ? तब मुखिया ने मालूम

करी कि, गुजरात अहमदाबाद सूँ कूँच होय गयो है। तब दरबार ने कही कि—'हमारे धन्य भाग्य हैं, हमारी मेदपाट भूमि कौ अवश्य ही कछु शुभ होनहार है। क्योंकि आजकाल म्लेच्छन के प्राबल्य सूँ हिंदू राजयन की बहुत अव्यवस्था होय गई है। तुम सुखेन महाराज कूँ पधारवे की विनती करो'। राणाजी ने पत्र कौ उत्तर लिख दियो और कही कि—'यहाँ आपकूँ कोई प्रकार की अड़चन नहीं होयगी, व्रजरायजी यहाँ आपकौ कछु न कर सकेंगे। और हमसूँ जो बनेगी, सो सेवा में हाजर रहेंगे'। या प्रमाण कहके राणाजी ने मुखिया कूँ विदा कियो।

अहमदाबाद सूँ (सं. १७२६ के अन्तिम मास में) चलिकें श्रीगंगाबेटीजी प्रभृति ने कछु दिन बाद मेवाड़ में 'बड़ी सादड़ी' नामक गाम में डेरा कियो। यह गाम उदयपुर दरबार के भाई-बेटा जागीरदार झाला राजपूत जिनकूँ 'राजराणा' की पदवी प्राप्त है, उनके अधिकार में है। जब या 'सादड़ी' गाम में श्रीद्वारकाधीश विराजते हते, तब ये मुखिया उदयपुर सूँ सादड़ी आयो। श्रीव्रजभूषणजी महाराजा कूँ तथा श्रीगंगाबेटीजी श्रीजानकीवहूजी कूँ दंडवत् प्रणाम मालूम करिके दरबार कौ पत्र दियो। यह पत्र बाँचिके महाराज तथा बेटीजी प्रभृति बहुत प्रसन्न भये।

सादड़ी सूँ श्रीप्रभुन कूँ आसोटिया पधरायवे की तैयारी कौ हुकम भयो सुनिके सादड़ी-राजराणा ने महाराज सूँ अर्ज करी कि—कृपानाथ! आप कृपा करकें आसोटिया में मंदिर सिद्ध होय तहाँ ताईं सेवक कौ ही मनोरथ सिद्ध करें। ता पाछें राजराणा की विनंती सूँ सादड़ी में श्रीद्वारकाधीश छः महिना ताई विराजे।

तहाँ चैत्र सुदी १ (नए वर्ष) (स. १७२७) के दिन पधारे सो जन्माष्टमी ताईं सादड़ी में विराजे। जन्माष्टमी के उत्सव के परमानंददायक दर्शन करिके सादडी-राज चकित होय गए, उननें अपनें सादड़ी पट्टे में सूँ ३ गाम श्रीप्रभुन के विनियोग के लिए भेंट किए। नाम सुनकर कंठी बँधाई और श्रीव्रजभूषणजी महाराज के वे सेवक भए।

श्रीराधाष्टमी कौ उत्सव आसोटिया में भयो। सादड़ी सूँ पधराते समय मेवाड़ देश में पधराते ही पहलेसूँ उदयपुर खबर कर दीनी हती, सो महाराणाजी बीस कोस ताई सामे अपने राज्यमंडल-सहित पधरायवे आये, और परम हर्ष सूँ 'आसोटिया' में (सं. १७२७ भाद्र. शु. ७ के दिन) श्रीप्रभु कूँ पधराये।

संवत् १७०९ कार्तिक कृष्ण ४ के दिन उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी कौ स्वर्गवास भयो तब महाराणा राजसिंहजी राजा भए हते। ये भी श्रीव्रजभूषणजी महाराज के सेवक भए और कंठी बँधाई। इन महाराणा रायसिंहजी के ही समय संवत् १७२८ में श्रीनाथजी भी मेवाड़ के गाम 'सिंहाड़' मे पधारे, और श्रीनाथद्वार सुबस कियो। राणा रायसिंहजी ने कांकरोली के खास किनारा पे 'रायसागर' तलाव बँधायो।

महाराणा रायसिंहजी के पीछे महाराणा जयसिंहजी भए। यह भी श्रीव्रजभूषणजी महाराज के सेवक भए। संवत् १७४५ कार्त्तिक कृष्ण ९ के दिन श्रीव्रजभूषणजी के श्रीगिरिधरलालजी नामेक पुत्र भए। श्रीगिरिधरलालजी की जब सात (१) वर्ष की अवस्था हती वा समय श्रीव्रजभूषणजी महाराज लीला विस्तारे। महाराणा जयसिंहजी के देहान्त के पीछे महाराणा अमरसिंहजी (दूसरे) राजा भए। ये श्रीगिरिधरलालजी के कंठीबंद सेवक भए।

एक समय रायसागर तलाव कौ पानी बहोत चढ्यो सो यहाँ तक कि–तलाव की पालके ऊपर सूँ पानी की चादर पड़वे लगी। तमाम जंगल में जल-ही-जल होय गयो। गाम आसोटिया में सबन के घरन में जल होय गयो, और खास मंदिर में भी जल-प्रवेश भयो सो प्रभुन कूँ श्रम भयो।

जल-उपद्रव के समय श्रीप्रभु दो-तीन दिन पास की टेकरी (मंगरी) पर नीम के वृक्ष नीचे विराजे और सौकर्यभाव सूँ वहाँ भींजे देवल आरोगे[1] तब महाराज ने विचारी जो–या तलाव के निकट इतनी नीची जमीन में रहवे सूँ प्रभुनकूँ जबतब श्रम होनो संभव है, तासूँ या नजीक के कांकरोली गाम में खास तलाव के ऊपर जो टेकरी है, वापे मंदिर बनवाय के रहनो। यह विचार निश्चय कर उदयपुर लिखा-पढी करी। आगे ये गाम आमेट के जागीरदार रावजी को हतो। उन आमेटरावजी कूँ, तो वा कांकरोली गाम की एवज में दूसरो गाम दरबार ने दियो, और कांकरोली भेंट कर दीनी। कांकरोली मंदिर बनवे लग्यो, सो मंदिर सिद्ध भए पीछे संवत्

१ तब सूँ या स्थान को नाम 'देवलमगरी' प्रसिद्ध भयो। और वा नीम वृक्ष को एक काष्ट को नौमहला सिद्ध भयो जो अब भी कार्त्तिक कृष्ण पक्ष में काम में आवे है।

करी कि, गुजरात अहमदाबाद सूँ कूँच होय गयो है। तब दरबार ने कही कि—'हमारे धन्य भाग्य हैं, हमारी मेदपाट भूमि कौ अवश्य ही कछु शुभ होनहार है। क्योंकि आजकाल म्लेच्छन के प्राबल्य सूँ हिंदू राज्यन की बहुत अव्यवस्था होय गई है। तुम सुखेन महाराज कूँ पधारवे की विनती करो'। राणाजी ने पत्र कौ उत्तर लिख दियो और कही कि—'यहाँ आपकूँ कोई प्रकार की अड़चन नहीं होयगी, व्रजरायजी यहाँ आपकौ कछू न कर सकेंगे। और हमसूँ जो बनेगी, सो सेवा में हाजर रहेंगे'। या प्रमाण कहके राणाजी ने मुखिया कूँ विदा कियो।

अहमदाबाद सूँ (सं. १७२६ के अन्तिम मास में) चलिकें श्रीगंगाबेटीजी प्रभृति ने कछु दिन बाद मेवाड़ में 'बड़ी सादड़ी' नामक गाम में डेरा कियो। यह गाम उदयपुर दरबार के भाई-बेटा जागीरदार झाला राजपूत जिनकूँ 'राजराणा' की पदवी प्राप्त है, उनके अधिकार में है। जब या 'सादड़ी' गाम में श्रीद्वारकाधीश विराजते हते, तब ये मुखिया उदयपुर सूँ सादड़ी आयो। श्रीव्रजभूपणजी महाराजा कूँ तथा श्रीगंगाबेटीजी श्रीजानकीबहूजी कूँ दंडवत् प्रणाम मालूम करिके दरबार कौ पत्र दियो। यह पत्र बाँचिके महाराज तथा बेटीजी प्रभृति बहुत प्रसन्न भये।

सादड़ी सूँ श्रीप्रभुन कूँ आसोटिया पधरायवे की तैयारी कौ हुकम भयो सुनिके सादड़ी-राजराणा ने महाराज सूँ अर्ज करी कि—कृपानाथ! आप कृपा करकें आसोटिया में मंदिर सिद्ध होय तहाँ ताईं सेवक कौ ही मनोरथ सिद्ध करें। ता पाछें राजराणा की विनंती सूँ सादड़ी में श्रीद्वारकाधीश छः महिना ताईं विराजे।

तहाँ चैत्र सुदी १ (नए वर्ष) (सं. १७२७) के दिन पधारे सो जन्माष्टमी ताईं सादड़ी में विराजे। जन्माष्टमी के उत्सव के परमानंददायक दर्शन करिके सादडी-राज चकित होय गए, उननें अपनें सादड़ी पट्टे में सूँ ३ गाम श्रीप्रभुन के विनियोग के लिए भेंट किए। नाम सुनकर कंठी बँधाई और श्रीव्रजभूपणजी महाराज के वे सेवक भए।

श्रीराधाष्टमी कौ उत्सव आसोटिया में भयो। सादड़ी सूँ पधराते समय मेवाड़ देश में पधराते ही पहलेसूँ उदयपुर खबर कर दीनी हती, सो महाराणाजी बीस कोस ताईं सामे अपने राज्यमंडल-सहित पधरायवे आये, और परम हर्ष सूँ 'आसोटिया' में (स. १७२७ भाद्र. शु. ७ के दिन) श्रीप्रभु कूँ पधराये।

संवत् १७०९ कार्तिक कृष्ण ४ के दिन उदयपुर के महाराणा जगतसिंहजी कौ स्वर्गवास भयो तब महाराणा राजसिंहजी राजा भए हते। ये भी श्रीव्रजभूषणजी महाराज के सेवक भए और कंठी बँधाई। इन महाराणा रायसिंहजी के ही समय संवत् १७२८ में श्रीनाथजी भी मेवाड़ के गाम 'सिंहाड़' मे पधारे, और श्रीनाथद्वार सुगम कियो। राणा रायसिंहजी ने कांकरोली के खास किनारा पे 'रायसागर' तलाव बँधायो।

महाराणा रायसिंहजी के पीछे महाराणा जयसिंहजी भए। यह भी श्रीव्रजभूषण-जी महाराज के सेवक भए। संवत् १७४५ कार्त्तिक कृष्ण ९ के दिन श्रीव्रजभूषणजी के श्रीगिरिधरलालजी नामक पुत्र भए। श्रीगिरिधरलालजी की जब सात (?) वर्ष की अवस्था हती वा समय श्रीव्रजभूषणजी महाराज लीला विस्तारे। महाराणा जयसिंह-जी के देहान्त के पीछे महाराणा अमरसिंहजो (दूसरे) राजा भए। ये श्रीगिरिधरलालजी के कंठीबंद सेवक भए।

एक समय रायसागर तलाव कौ पानी बहोत चढ्यो सो यहाँ तक कि—तलाव की पालके ऊपर सूँ पानी की चादर पड़वे लगी। तमाम जंगल में जल-ही-जल होय गयो। गाम आसोटिया में सबन के घरन में जल होय गयो, और खास मंदिर में भी जल–प्रवेश भयो सो प्रभुन कूँ श्रम भयो।

जल-उपद्रव के समय श्रीप्रभु दो-तीन दिन पास की टेकरी (मंगरी) पर नीम के वृक्ष नीचे बिराजे और सौकर्याभाव सूँ वहाँ भींजे देवल आरोगे[1] तब महाराज ने विचारी जो—या तलाव के निकट इतनी नीची जमीन में रहवे सूँ प्रभुनकूँ जबतब श्रम होनो संभव है, तासूँ या नजीक के कांकरोली गाम में खास तलाव के ऊपर जो टेकरी है, वापे मंदिर बनवाय के रहनो। यह विचार निश्चय कर उदयपुर लिखा-पढी करी। आगे ये गाम आमेट के जागीरदार रावजी को हतो। उन आमेटरावजी कूँ, तो वा कांकरोली गाम की एवज में दूसरो गाम दरबार ने दियो, और कांकरोली भेंट कर दीनी। कांकरोली मंदिर बनवे लग्यो, सो मंदिर सिद्ध भए पीछे संवत्

1. तब सूँ या स्थान को नाम 'देवलमगरी' प्रसिद्ध भयो। और वा नीम वृक्ष को एक काष्ट को नौमहला सिद्ध भयो जो अब भी कार्त्तिक कृष्ण पक्ष में काम में आवे है।

१७७६ के साल में चैत्र वदो ९ के दिन श्रीद्वारकाधीश आसोटिया गामसूँ कांकरोली के मंदिर में प्रसन्नता सूँ पधारि के विराजे[1]।

॥ षोडशोल्लासः समाप्तः ॥

—०—

श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्य-वार्ता सम्पूर्ण

——+——

१ श्रीगिरिधरलालजी महाराज के संवत् १७६५ मार्गशीर्ष शुक्ल २ के दिन लालजी को प्राकट्य भयो, उनको नाम श्रीव्रजभूषणजी भयो। यह व्रजभूषणजी बड़े प्रतापी भए। इनमें जयपुर के राजा माधवसिंहजी (उदयपुर-दरबार के भानजे) कूँ जयपुर पधार के सेवक किए। आपने 'नीति विनोद' नामक एक छोटो सो ग्रन्थ (राजनीति को विषय) तथा अनेक संस्कृत तथा भाषा-ग्रन्थ, कीर्तनादि काव्य भी किए हैं। इन्हीं श्रीव्रजभूषणजी ने श्रीद्वारकाधीश की वार्ता अपने श्रीहस्तसूँ लिखी, और इनके पिता श्रीगिरिधरलालजी ने अपने श्रीमुखसूँ लिखाई।

श्रीव्रजभूषणजी के सेवक उदयपुर के चार महाराणा भए, जिनके नाम ये हैं—(पहले) प्रतापसिंहजी, (दूसरे) राजसिंहजी, (तीसरे) अरिसिंहजी, (चौथे) हमीरसिंहजी। या प्रकार श्रीद्वारकाधीश कांकरोली में सुखपूर्वक विराजे हैं। श्रीसरस्वती-भंडार की श्रीव्रजभूषणजी महाराज के हस्ताक्षर की अति प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पुस्तक सूँ संशोधित कर यह वार्ता गोस्वामी श्रीगिरिधरलालजी के पुत्र बालकृष्णलालजी (कांकरोली) ने अपने पिता तथा श्रीद्वारकाधीश की कृपा सूँ लिखी।

• संवत् १९६२ माघ शुक्ल १५ शुक्रवार मुकाम वड़ोदा में संपूर्ण भई।

॥ शुभं भवतु ॥

गो० श्रीव्रजभूषणजी महाराज के समय की पंड्याजी द्वारा लिखी हुई "श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्यवार्ता" एक प्रति तथा पितृचरण गो० श्रीबालकृष्ण-लालजी महाराज के श्रीहस्त से लिखी हुई दो प्रति श्रीसरस्वती-भण्डार विद्या-विभाग, कांकरोली में विद्यमान हैं। उक्त तीनों पुस्तकों के द्वारा प्रस्तुत 'श्रीद्वारकाधीश की प्राकट्यवार्ता' वैष्णवों के ज्ञानसंवर्द्धनार्थ प्रकाशित की है। इसमें समयोपयोगी भाषा का कहीं कहीं सुधार करना आवश्यक समझा गया है। श्रीमद्वल्लभाचार्य से लेकर अद्यावधि तिलकायितों का चरित वर्णन और विशेष इतिहास 'कांकरोली का इतिहास' में वर्णन किया गया है। शम्।

रथयात्रा, सं० १९९४ (प्र. सं.) गो० श्रीव्रजभूषण शर्मा
ज्येष्ठाभिषेक, सं. २०१३ (द्वि. सं.) कांकरोली

—×—